R.N.I.No.-CHHHIN16015 डाक पंजीयन संख्या–छ.ग./बस्तर/28/2015–17

सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति एवं आधुनिक साहित्य को समर्पित त्रैमासिक

संपादकीय कार्यालयः–

'बस्तर पाति'

सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास,

जगदलपुर, जिला–बस्तर, छ.ग. पिन–494001

मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति

जल्दी ही इंटरनेट पर–www.paati.bastar.com

मूल्य पच्चीस रूपये मात्र•अंक–8,मार्च–मई 2016

प्रकाशक एवं संपादक
सनत कुमार जैन
सह संपादक
श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस'
महेन्द्र कुमार जैन
शशांक श्रीधर
शब्दांकन
सनत जैन
मुख पृष्ठ
श्री नरसिंह महांती
रेखांकन
श्री नरसिंह महांती
प्रभारी उत्तरप्रदेश
शिशिर द्विवेदी
प्रभारी छत्तीसगढ़
भरत कुमार गंगादित्य

सहयोग राशि:–साधारण अंकः पच्चीस रूपये एकवर्षीयः एक सौ रूपये मात्र, पंचवर्षीयः पांच सौ रूपये मात्र, संस्थाओं एवं ग्रंथालयों के लिएः एक हजार रूपये मात्र। सारे भुगतान मनीआर्डर व ड्राफ्ट ***सनत कुमार जैन*** के नाम पर संपादकीय कार्यालय के पते पर भेजें या स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के खाता क्रमांक **10456297588** में भी बैंक कमीशन 50 रूपये जोड़कर सीधे जमा कर सकते हैं।

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक, स्वामी सनत कुमार जैन द्वारा सन्मति प्रिन्टर्स, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर से मुद्रित एवं जगदलपुर के लिए प्रकाशित

सभी रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपनी रचनाएं कृतिदेव 14 नंबर फोण्ट में एवं एक्सेल, वर्ड या पेजमेकर में ईमेल से ही भेजने का कष्ट करें जिससे हमारे और आपके समय एवं पैसों की बचत हो। रचना में अपनी फोटो, पूरा पता, मोबाइल नंबर एवं ईमेल आईडी अवश्य लिखें। के प्रत्येक पेज में नाम एवं पता भी लिखें।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से बस्तर पाति, संपादक मंडल या संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। रचनाकारों द्वारा मौलिकता संबंधी लिखित/मौखिक वचन दिया गया है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक। समस्त विवाद जगदलपुर न्यायालय के अंतर्गत।

लघुकथा/डॉ. शैलचंद्रा/1
पाठकों से रूबरू/2
पाठकों की चौपाल/5
बहस/कहानी केतत्व : नाटकीयता और बुनावट/7
व्यंग्किाएं/अविनाश ब्यौहार/12
पद्मश्री धर्मपाल सेनी विशेष
एक मुलाकात/पद्मश्री धर्मपाल सेनी/13
आत्मकथन/पद्मश्री धर्मपाल सेनी/17
कविताएं/पद्मश्री धर्मपाल सेनी/22
समीक्षा आलेख/कविताएं–पद्मश्री धर्मपाल सेनी/25
कहानी/बंजारन/रत्न कुमार सांभारिया/26
रंगीला बस्तर/बस्तर में आस्था से जोड़कर.. ../विजय भारत/30
काव्य/केशरीलाल वर्मा/33
कहानी/खाली हथेली/डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शनी/34
समीक्षात्मक आलेख/दुश्यंत कुमार/प्रो. अर्चना जैन/38
आलेख/नारी/नवल जायसवाल/41
आलेख/भूमि अधिग्रहण की सार्थकता/बस्तर पाति फीचर्स
काव्य/धरणीधरसिंह/45
आलेख/मुझे चाहिए /नरेन्द्र परिहार/46
काव्य/धनेश यादव 'कमलेश'/48
कहानी/सजा/डॉ. शुभ्रा श्रीवास्तव/49
काव्य/वंदना राठौर/सुनीति बैस/53
काव्य/आनंद तिवारी पौराणिक/एस.पी. विश्वकर्मा/54
काव्य/संतोष श्रीवास्तव 'सम'/दिनेश विश्वकर्मा/55
काव्य/सतीश लखोटिया/राजेश जैन राही'/56
काव्य/नथमल झंवर/57
विशेष रपट/58
नक्कारखाने की तूती/59 पत्रिका मिली/60
साहित्यिक उठापटक/61
कविता कैसे बदले तेरा रूप/63
फेसबुक वॉल से/63

लघुकथा

बदलते प्रतिमान

सरकारी स्कूल के शिक्षक पिता से कान्वेंट स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे ने प्रश्न किया–''पिता जी मेरी क्लास में पढ़ने वाले मेरे मित्रों के पिता बड़े–बड़े पद में हैं। कोई डिप्टी कलेक्टर हैं तो कोई इंजीनियर हैं। वे सब मुझे चिढ़ाते हैं कि तेरे पिता एक सरकारी स्कूल के मास्टर हैं। पिता जी आप भी बड़े अधिकारी क्यों नहीं बने ?

अपने ही बच्चे के इस प्रश्न से बुरी तरह आहत पिता क्या बताते कि जैसे–तैसे गरीबी में पढ़कर कम से कम स्कूल मास्टर तो बन गये जो उनके और परिवार के लिए गर्व की बात थी कि वे देश का भविष्य गढ़ते हैं। राष्ट्र के निर्माण में योगदान देते हैं। परन्तु आज समाज में उनकी क्या हैसियत है, यह उनका बेटा ही बता रहा है। उन्होंने अपने को संयत कर कहा–''बेटा! तुम अपने मित्रों से पूछना कि उनके पिता बड़े–बड़े पद में कैसे पहुंचे हैं ? हम जैसे प्रायमरी मास्टरों की बदौलत ही न! बेटा शिक्षक भूमिका समाज में महत्वपूर्ण होती है।

पिता की बात बच्चे ने कुछ समझी, कुछ न समझी। बस मासूमियत से देखता रहा।

डॉ. शैलचंद्रा, रावणभाटा, नगरी, जिला–धमतरी मो.–9977834645

नेट न्यूट्रीलिटी के नारे के बीच यह सच्चाई प्रकाश में नहीं आ पा रही है कि यह बाजार में एकाधिकार की क्रांति है। वर्चस्व की इस लड़ाई में थोथे आरोपों का दौर आने वाला है। इसके साथ ही अपनी पहचान और संबंधों के आधार पर टांग खिंचाई का भी काम भीतर ही भीतर जारी है।

यह लड़ाई ठीक हम साहित्यकारों के बीच चलने वाली लड़ाई की तरह है। ये बात शोधनीय है कि साहित्यकारों ने बड़ी कंपनीयों से सीखा है या फिर बड़ी कंपनीयों ने हम जैसे साहित्यकारों से। वर्चस्व कई तरह का है प्रदेश की राजधानी में रहने वाला अन्य जगह के साहित्यकारों को शून्य मानता है। उसके पास पावर है, सत्ता के केन्द्र में बैठा है, जुगाड़ है इसलिए साहित्यकार है। जब तक कोई दूसरा नहीं आता तब तक वह निर्विवादीत रूप से श्रेष्ठ है। प्रदेश के अन्य जिला मुख्यालयों में बैठे साहित्यकारों के लिए उनके क्षेत्र के अन्य गांव शहर के लोग गंवार हैं।यहां तक तो आम भारतीय सोच के मुताबिक मान ही लिया जाता है कि यह तो 'ईश्वरीय नियम' है। अब दौर है अपने ही शहर, अपने ही क्षेत्र की प्रतिभाओं के सीने पर सवार होकर स्वयं को वरिष्ठ साहित्यकार घोषित करने का। (यह भी ऐतिहासिक सच माना जा सकता है।) यहां मैं विषय से भटक कर कुछ कहना चाहूंगा। बहुत से विद्वान हमेशा यह कहते मिल जायेंगे कि कुछ नया लिखो। रोटी कपड़ा और मकान की सच्चाई में जीव भर उलझने वाले लोग यही लिखेंगे और हर पल जन्मती नई पीढ़ी उन्हीं सच्चाईयों का सामना करती आगे बढ़ेगी। हर बच्चा पैदा होकर सीधे चलना/दौड़ना शुरू नहीं करेगा–पीठ के बल पड़ा रहकर, फिर पलटकर, फिर खिसककर, फिर रेंगकर, घुटनों के बल चलकर, उसके बाद कहीं जाकर खड़ा होकर चलेगा–ये तो सभी पैदा होने वाले बच्चों के साथ होगा। उनके लिए तो उनके जीवन का हर पल नया होगा। या फिर वह सोचेगा कि सब बच्चे तो ऐसे ही करते हैं मैं सीधे उड़ूंगा। रचनाकार को स्वतंत्र तरीके से बढ़ने का मौका मिलना चाहिए, अपनी प्रतिभा को व्यक्त करने का मौका मिलना चाहिए। उसे मैकाले के सांचे में डालकर 'साहित्यिक केक' बनाकर नहीं निकाला जा सकता है। वर्तमान मान्यता देनेवाले इस दौर में साहित्यकार नहीं किया जा सकता, मानना ही पड़ेगा। भले ही आप अपने तुच्छ दुराग्रह, पूर्वाग्रह से 'इतिसिद्धम' कहते रहें। नया व्यक्ति अगर अपने तरीके से देखते देखते ही सीखेगा तो कुछ नया करेगा। अगर किसी पूर्वभाषित, पूर्वनिर्धारित परिपाटी की ओर ही चलेगा तो वर्तमान शोधकों की तरह यहां का ईट वहां की माटी जोड़कर 'कुतुबमीनार' की तरह ऐतिहासिक हो जायेगा। नवांकुर को देखते ही कुछ 'विद्वान' साहित्यकार टूट पड़ते हैं। अपने अपने खेमे के प्रतीक साहित्यकारों को पढ़ने पढ़ाने के लिए पढ़ना जरूरी है– का नारा बुलंद करते हैं। अपने बहुत है, उन खेमों के नाम से ही उनके प्रतीक कौन समझ जायेंगे फिर भी नये लोगों को आप समझा देंगे। दलित खेमा, स्त्री विमर्श खेमा, प्रगतिशील खेमा (अंतर्निहित मार्क्सवाद, समाजवाद, पूंजीवाद का विरोध आदि की तरह कई 'वाद') कबीरपंथी खेमा, धार्मिक खेमा, जातिवादी खेमा आदि, आदि।

जब प्रकृति ही पुराने पत्तों, पुराने पहाड़ों, जंगलों, नदियों में हेर फेर करती रहती है तो फिर हम और आप अपनी घटिया गतिविधियों से स्वयं को स्थापित करने का प्रयास क्यों करते हैं ? क्यों हम यह मानकर चलते हैं कि नवागंतुक हमारे लिए गढ्ढा खोद रहा है। प्रकृति का नियम है बदलाव! इसे हम और आप कितने ही प्रयासों से बदल नहीं सकते। हां, ऐसे प्रयासों से हम स्वयं को अपमानित, उपेक्षित और प्रताड़ित कर सकते हैं, ऐसे प्रयासों से लोग किसी को मान्यता नहीं देते अलबत्ता उन्हें उपेक्षित जीवन जीने पर मजबूर कर देते हैं। उनका बॉयकाट सर्वथा उचित उपाय होता है क्योंकि साहित्यकार का काम तलवार भांजना तो नहीं है।

वर्चस्व के इस दौर में नवांकुरों को रौंदने का बेरहम कार्य जबर्दस्त ढंग से चल रहा है ठीक उतने ही जबर्दस्त ढंग से स्वयं को स्थापित करने के प्रयास! स्वयं को साहित्य का भगवान साबित करने की होड़ में अपने बीच के लोगों का तिरस्कार करके उत्सुक मन को मारना धडल्ले से जारी है। जिन्हें हम अपना सबकुछ मान लेते हैं वही हमारे लिए हमारे आसपास कुंअे जैसे गढ्ढे खोद देता है।

समाज में साहित्य के अवमूल्यन का मूल कारण खोजना जरूरी है परन्तु वहां से शुरूआत न हो जहां से गलती हो चुकी है। मूलबिन्दुओं की ओर देखा जाए, जमीनी हकीकत समझी जाए, अपना स्वार्थ सिद्ध करने के प्रयासों से विलग प्रयास हो। पूर्वाग्रह, दुराग्रह से हटकर कारण खोजें जायें। बीमारी के लक्षणों का उपचार नहीं बल्कि बीमारी के उपचार की आवश्यकता है।

ऐसा क्यों होता है कि साहित्यकार स्वयं की स्थापना के लिए नवांकुरों की रचनाओं को पढ़ते ही कह देता है यह तो मैंने पहले ही लिख लिया है, खोज कर दिखाता हूं। उस नवांकुर के नवीन आइडिया को चुराने के साथ ही साथ उस नवागंतुक साहित्यकार का गला घोंट दिया जाता है। अपने आगे बड़ी लकीर कोई खींच न पाये इसका उनके तरीके से प्रयास होता है। अपने क्षेत्र के लोगों की रचनाओं को छपने ही न देना, कार्यक्रम में न बुलाना, अगर बुला लिया तो रचनापाठ का मौका न देना आदि।

अजीब विरोधाभास है एक ओर हर कोई साहित्यिक गोष्ठी में, लघु पत्र–पत्रिकाओं में और आपस की चर्चाओं में स्तरीय रचनाएं ढूंढते हैं, नामी और नवोदितों की रचनाओं को सिरे से खारीज कर देते हैं। इसके बाद कहते हैं कि नए लोग साहित्य के प्रति उदासीन हैं। स्वयं को प्रेमचंद, निराला की तरह स्थापित करना चाहते हैं। नवोदितों की इस कदर आलोचना की जाती है कि वह लेखन के प्रति उदासीन हो जाता है। उत्साह बढ़ाने के उपाय हैं–मसलन–गोष्ठी में मौका, लघुपत्रिका में छापना और उन नवोदितों की रचनाओं पर समीक्षात्मक कार्यक्रम, स्कूलों में कार्यक्रम, प्रमाणपत्र वितरण, सम्मान पत्र देना, अखबारों में उनके समाचार/चित्र छपवाना। कौन आचरण और व्यवहार में ये सब उतार रहा है ? जहां किसी नवोदित साहित्यकार में संभावना नजर आई उसकी रचनाओं, उसके स्वाभाव, उसके पारिवारीक जीवन की आलोचना, चुगली शुरू हो जाती है। उसके बाय काट का पूरा फूलप्रूफ प्रबंध किया जाता है। जानबूझकर साहित्यिक कार्यक्रमों को टालते हैं जिससे कि नवोदितों को रचना पाठ का मौका न मिले। इससे उनकी 'बादशाहत बनी रहेगी क्योंकि छोटी लकीर के आगे बड़ी लकीर खींचेंगी ही नहीं। कई कर्ता–धर्ता तो अपने ग्रुप से जुड़े नवोदितों (बाकी अन्य को भी) दूसरे ग्रुप से जुड़ने नहीं देते हैं। फोन पर धमकाते हैं, अपमानित करते हैं। यदि किसी साहित्यिक पत्रिका में नवोदित ने रचना भेजी और उस नवोदित के शहर के कोई प्रसिद्ध (जुगाडु) साहित्यकार से पत्रिका के संपादक ने बता दिया 'अरे भाई फलाने की रचना आई है, इस अंक में छपने वाली है।' फिर देखिए वह 'प्रसिद्ध' एड़ीचोटी का जोर लगाकर रचना छपने नहीं देगा। मान लीजिए इसके भारी प्रयास के बाद भी रचना छप गई तो सारा क्रेडिट 'प्रसिद्ध' ले लेगा कि 'मैंने उस नवोदित को प्रेरित किया, उसकी रचनाओं को अच्छा बताकर फलाने संपादक की पत्रिका में छपवा दिया।'

शहर के कुछ नामी व्यक्ति ऐसे होते हैं जो स्वयं को साहित्य से भी बड़ा मानते हैं। उनके भीतर का घमण्ड उनके व्यवहार और शक्ल में भी नजर आने लगता है। वे नई पीढ़ी से अपेक्षा रखते हैं कि उन्हें ही मुख्य अतिथि, मुख्य वक्ता या मुख्य सम्मानकर्ता बनाए, इसके अलावा अन्य रूप बिल्कुल नापसंद होता है। उनके मनमुताबिक न होने पर गुटबाजी करना, स्वयं कार्यक्रम में उपस्थित होकर शांतिभंग करना ही उनका उद्देश्य हो जाता है। ऐसी घटिया मानसिकता वाले को यदि अपने कार्यक्रम में बुलाना यानी अपने पैर में खुद ही कुल्हाड़ी मारना! साहित्य के ऐसे ठेकेदार अपनी पत्नी को भी साहित्यकार के रूप में महिमामंडित करने से नहीं चूकते हैं। अपनी रचनाओं को अपनी पत्नी के नाम पर छपवाकर जबरन वाहवाही लूटते नजर आ सकते हैं और उनकी ऐसी तथाकथित साहित्यकार पत्नी साहित्य पर चर्चा करती नजर आ सकती है। वर्तमान दौर इस तरह की बेहूदा सोच के चलते भ्रमित हो गया है। नये साहित्यकार साहित्य की अच्छी बातों से आकर्षित होकर आते हैं और यहां पहुंचकर भटक जाते हैं।

किसी मनोरोगी की तरह व्यवहार करने वाले इन साहित्यपुरोधाओं का इलाज क्या हो सकता है ? इसका हल ढूंढकर समय न बरबाद करके उन्हें अनदेखा किया जाए, उनका साहित्यिक बहिष्कार किया जाना उचित होगा। वैसे भी लड़ना, झगड़ना साहित्यकार का काम नहीं होता है। पर अचरज की बात है कि नवोदितों के प्रति लगभग हर छोटी बड़ी साहित्यिक संस्थाओं का नजरिया इसी तरह का है। न तो नए साहित्यकारों को ढूंढने की पहल करते हैं न ही उन्हें जोड़ने का प्रयास करते हैं। इसके पीछे मात्र यही गूढ़ संदेश होता है कि नए को मौका देना मतलब अपने लिए गढ्ढा खोदना। आलोचनाओं से उपजी परिस्थितियों को अपना हथियार बनाकर आगे बढ़ते जाना उचित है, यदि आलोचकों से डरकर रूक गये तो क्या कर पायेंगे ? और फिर आलोचक चाहते भी तो यही हैं, तभी तो लंगड़ी मारते हैं। साहित्य की राजनीति के पुरोधा नवोदितों के पीछे–पीछे जितना व्यूह रचते हैं उतना ही सामने भी रचते हैं। सार्वजनिक बुराई करना, किसी किये गये कार्य की नुक्ताचीनी करना उनका अधिकार होता है। दो चार सम्मान मिल जाये तो फिर देखिए उनका पॉवर! वे तो साहित्य तो साहित्य, समाज के प्रत्येक क्षेत्र के बाप हो जाते हैं।

अगर संयोजक और आयोजक की मनसा को भांपे बगैर सारे लोग अपनी रोटी सेंकने से बाज नहीं आते हैं तो कार्यक्रम चौपट हो सकता है। शरीर जिन अंगों से मिलकर बनता है ठीक उसी तरह कार्यक्रम भी विभिन्न सहयोगियों के साथ मिलकर पूर्ण होता है। यदि एक भी सहयोगी का सहयोग बिगड़ा, पूरा कार्यक्रम बिगड़ सकता है। वर्चस्व के लिए साहित्य से जुड़ा व्यक्ति अपनी विशेषता तेजी से ढूंढ कर अमल करता है। कार्यक्रम का आयोजक आयोजन न करने के बहाने ढूंढता है। मुख्य अतिथि जो सामान्यतः उम्रदराज होता है, वह अपनी व्यस्तता का रोना रोता है। 'घर आकर बोला ही नहीं' का जवाब हमेशा तैयार मिलता है। मधुर कण्ठ का कवि/गीतकार गले में तकलीफ का बहाना बनाता है। स्त्री रचनाकार गृहस्थी का बहाना मारती है। मंच संचालक कार्यक्रम के एन वक्त पर धोखा दे सकता है। पैसा खर्च करने वाला अपने लोगों से स्वागत करवाता है।

मान लीजिए किसी शहर में प्रकाशक/संपादक है तो वह अपने शहर के लोगों को नहीं छापता है। उनका प्रयास स्वयं को रेखांकित (हाईलाइट) करने में ही रहता है। वह ऐसे लोगों को छापता है जो उसे अपने शहर बुलाकर सम्मान करते हैं और अपने उन संपादक मित्रों को छापता है जो उनके ऊपर विशेषांक निकालते हैं या फिर रचनाएं छापते हैं भारी भरकम प्रशंसा के विशेषणों के साथ।

मौका पड़ने पर मजा चखाने की प्रवृत्ति कार्यक्रम के विभिन्न सहयोगियों के बीच होती है और यदि शहर में कोई अन्य आयोजक, प्रायोजक, संयोजक, मंच संचालक, मुख्य अतिथि, कार्यक्रम की रिपोर्टिंग करने वाला आदि हैं तो उनके बीच भी अहम् और वर्चस्व की लड़ाई शुरू हो जाती है। एक दूसरे के कार्यक्रम में न जाना, न बुलाना, एक दूसरे की बुराई फैलाना। कार्यक्रम फेल कराने के लिए गोटीबाजी करना यथा कार्यक्रम में शामिल न होने का कहना, कार्यक्रम के किसी भी मंचसंचालक, मुख्य अतिथि, रिपोर्टिंग वाले को एन कार्यक्रम के समय पर उपस्थित न होने देना आदि प्रपंच रचे जाते हैं।

हम अचरज कर सकते हैं कि पता पूछने वाले को नाम ही न जानने का दावा तक कर दिया जाता है। जिनके बारे में सारा शहर जानता है उनके बारे में अपनी बेशर्म अनभिज्ञता जाहिर करना ? ऐसा कई मित्रों से फोन पर चर्चा के दौरान जानकारी में आया। महानगरों और बड़े शहरों में न जानना कोई गंभीर बात नहीं होती परन्तु छोटे शहर, गांव, कस्बे में ? घोर आश्चर्य !

किसी भी छोटी काव्य गोष्ठी/साहित्यिक परिचर्चा, विमोचन कार्यक्रम या सम्मान समारोह से समाज के नये लोगों को मौका मिलता है, उनकी प्रतिभा को खुलने का मंच मिलता है। नये लोगों को जोड़कर ही हम किसी परिवार के समझदार बुजुर्ग की तरह साहित्य की विरासत सौंप सकते हैं। अपने तुच्छ, त्वरित स्वार्थों की पूर्ति के लिए ऐसे कामों में रोड़े डालने वालों से बचने का क्या उपाय हो सकता है; इस पर विचार करना आवश्यक है।

पत्रिका प्रकाशन से जुड़ने के साथ ही लगातार आने वाले फोन और उनमें होती चर्चाओं से समझ आया कि ऐसी स्थिति कमोबेश हर जगह है। उपाय भी उनकी ही बातों से मिले। ऐसे उपद्रवी, षड़यंत्रकारियों का साहित्यिक बहिष्कार ही सर्वमान्य उपाय है। न उनके कार्यक्रम जाओ न ही उन्हें बुलाओ। जो साहित्य की संवेदनशील भावना को न समझा वो कैसा साहित्यकार ? साहित्यिक सम्मेलन/गोष्ठी मात्र आपसी विचारों के आदान प्रदान का साधन ही नहीं है बल्कि स्वसमीक्षा का माध्यम है, साहित्यिक सूचनाओं का आयोजन है, प्रेरणा स्थल है, नवागंतुकों का स्वागत स्थल है, साहित्य के बीजारोपण की भूमि है। यहां खरपतवारों और कीट–पतंगों का क्या काम हो सकता है ?

वर्तमान में एक बीमारी और फैली है और वह है स्वयं को विद्वान मान बैठने की। ऐसा विद्वान, महान जो स्वयं को अपने शहर/गांव में आयोजित इन कार्यक्रमों में या तो मुख्य अतिथि बनाये जाने पर उपस्थित होता है या फिर आयोजक के स्वयं के निवेदन, निवेदन पत्र पर ही आता है। साहित्यकार के प्रगतिशील होने के दावे के विपरित ऐसा व्यवहार आश्चर्यजनक लगता है। वर्तमान में तो शादी–विवाह में भी एस.एम.एस. से लोग आ जाते हैं। अब शादी वाले घर का सदस्य भी निमंत्रण के लिए पीले चावल/मखाने रखने नहीं जाता है तो फिर इतना घमण्ड किस लिए ? खुद का घमण्ड गया नहीं और हम चलें हैं दूसरों को संवेदनशील और जागरूक बनाने। हंसी का विषय है। समय के अनुकूल बनिए महाशय! वरना खुद ही बहिष्कृत हो जाओगे। घर में होने वाली शादी में अड़ियल दामाद को मनाने का दौर खत्म हो चुका है तो फिर....?

वर्चस्व के इस दौर युवा शक्ति की उपेक्षा स्वयं के लिए अंधे रास्ते पर चलने की तरह है। हम जितना प्रयास शहर के पुराने साहित्यकारों, श्रोताओं, पाठकों को जोड़े रखने के लिए करते हैं उससे कहीं बहुत कम ऊर्जा के उपयोग से नई पीढ़ी तैयार कर सकते हैं। स्कूलों में कार्यक्रम आयोजित करने का कलेन्डर तैयार करिये और देखिए नई प्रतिभाओं की नयी सोच। धार्मिक आयोजनों में काव्यपाठ रखिए फिर देखिए गृहणियों की प्रतिभा। इस संदर्भ में *बस्तर पाति* की सह संपादिका श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस' का योगदान प्रेरणास्पद है। उन्होंने पत्रपत्रिकाओं से नये साहित्यकारों के फोन नंबर निकालकर उनसे लगातार संवाद कायम किया। अपने समाज, अपनी लोकालिटी, अपने महिलामण्डल, सामाजिक संस्थाओं के सदस्यों को लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। उनकी रचनाओं को पढ़कर सुधार किया, लगातार उनके संपर्क में रही। नये लोगों पर किया उनका प्रयास सफल हो गया। सैकड़ों लोग उनकी 'फोनशिक्षा' से शिक्षित होकर हाइकुकार, लघुकथा लेखक बन गये, वह भी नये नवाड़ी। मुझे स्वीकार करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं कि मैं भी उनसे प्रेरणा पाकर हाइकु लिखना शुरू किया। धन्यवाद उषाजी! इस निस्वार्थ प्रयोजन के कारण ही आज हम *'बस्तर पाति'* में जुड़े हैं। महिला वह भी गृहस्थ मारवाड़ी परिवार से जहां औरतों का दिन शुरू भी किचन से होता है और रात भी वहीं से शुरू होती है। उन्होंने 'लघुकथा वर्तिका' के माध्यम से संकलन प्रकाशित किया।

निस्वार्थ व्यवहार ही साहित्य का उद्धार कर सकता है यह मान लेना ही उचित है। ***सनत कुमार जैन***

पाठकों की चौपाल

संपादक,

अंक 5–6–7 का संयुक्तांक अपने संपादकीय में अद्‌भुत रहा। तुमने वर्तमान में घटित आम आदमी और राष्ट्रभाषा हिन्दी की दुर्दशा पर सारगर्भित कटुसत्य को सहज सरल ढंग से समझाया है। पढ़कर सिहर जाता है एक सामान्य पाठक, एक सामान्य आदमी। सरकार और अफसरशाही कार्यशैली के बीच पिसता ही जा रहा है देश का आम आदमी। इस त्रासदी को तुम जैसा युवा संपादक जीवंत, सटीक, तिलमिला देने वाली सहज भाषा में इस गरिष्ठ विषय वस्तु को समझाया है, साधुवाद देता हूं। मेरे पास शब्द ही नहीं हैं तुम्हारे आलेख की विवेचना करूं, समीक्षा करूं। एक शिष्य के आगे एक शिक्षक नतमस्तकक है। तुमने इतना कुछ कह दिया कि मेरे पास कहने को कुछ भी नहीं है। तुम्हारे इस न्यायपरक, सारयुक्त गीतासार के संदर्भ में दो विद्वानों का उल्लेख जरूर करूंगा। एक आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री जो उ.प्र. के राज्यपाल भी थे, शास्त्रज्ञ होने के साथ–साथ अनेक भारतीय भाषाओं के भी विद्वान ज्ञाता थे, परन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दी को राष्ट्रीय एकता का माध्यम बनाने के लिए कृतसंकल्प थे। आज की हिन्दी में अंग्रेजी के बेमेल समिश्रण से उन्हें परहेज रहा, वे हिन्दी से अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग घट जायें, तद्‌भव शब्द ज्यादा प्रयुक्त हों। राजभवन को हिन्दी की सूक्तियों से अलंकृत भी करवाया था। भारतेन्दु साहित्य परिषद् के 70 वें अधिवेशन में बिलासपुर वे आये, अंग्रेजी के प्रोफेसर दिनेश ठाकुर भी वहां थे, शास्त्री जी का स्वागत करने वे स्टेशन गये, वहां उन्होंने शास्त्री जी को ठाकुर रविन्द्रनाथ टैगोर, उनकी धर्मपत्नी का बिलासपुर प्रवास के विषय में बताया, प्रसिद्व उपन्यासकार विमल मित्र के विषय में बताया, जेलरोड से गुजरते हुए राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'पुष्प की अभिलाषा' की उत्पत्ति स्थान केन्द्रीय जेल दिखाया। शास्त्री जी अभिभूत थे। शाम को सभागार में साहित्यकारों की भीड़ में उन्होंने कहा–'सौ हिन्दी वाले न सही, ठाकुर (दिनेशसिंह) जैसा एक अंग्रेजीवाला हिन्दी सेवक चाहिए। आज डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, पी.व्ही.नरसिंह राव, राजगोपालाचारी, जैसे कितने राष्ट्रभाषा संरक्षक संचारक रह गये हैं।'

दूसरा उदाहरण छत्तीसगढ़ के अंग्रेजी के मूर्धन्य, विद्वान प्रोफेसर दिनेश ठाकुर के उद्‌गार भी लिखना चाहूंगा। वे लिखते हैं कि उन्होंने संस्कृत भी अंग्रेजी में ही पढ़ा। साढ़े तीन दशकों तक निरंतर अंग्रेजी लिखने, बोलने, पढ़ने–पढ़ाने के बाद, सुनने को मिलता है कि मेरी हिन्दी प्रांजल, परिष्कृत, संस्कृतनिष्ठ है तो यह मेरे पूर्वजों का पुण्य है, मेरी नाभिनाल गर्भित धरित्री, अर्थात मेरी माटी के द्वारा दिये गये संस्कार हैं। अपनी भाषा अपनी ही होती है। प्रोफेसर दिनेशसिंह ठाकुर आगे लिखते हैं। वर्षों के अंतराल के बाद भी अंग्रेजी मुझे अभिव्यंजना की कम प्रवंचना की भाषा अधिक लगती है। कम से कम भारतीय संदर्भ में ठीक ही है। आज की परिस्थितियों में जो हिन्दी में निरंतर निष्ठापूर्वक लिख रहे हैं, उनका तमाम लेखकों की सिसृक्षा जिजिविषा अभिनंदनीय है। आज हिन्दी की पुस्तकें छापना, बेचना लोहे के चने चबाने जैसा है, यह जानते हुए भी जो आलेख अखबार हिन्दी साहित्य की पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं, हिन्दी के उन तमाम दुस्साहसी प्रकाशक वीर लेखक धीर मेरे श्रद्धास्वद हैं। इन विद्वजनों के कथन से समझ सकते हो कि तुम क्या हो, बस बढ़े रहो ऐसे ही आलेख लिखते रहो। आम पाठक के मन की भड़ास, क्रोध, अशांति को कहीं तो संतुष्टि मिलेगी। समसामयिक समस्याओं पर अपनी अभिव्यक्ति से सभी को संतृप्त करते चलो। साधुवाद।

पुनश्चः पद्मश्री मेहरून्निसा पर निकला विशेषांक अच्छा लगा। मेरा विश्वास है कि आज तक तुमने कितने सम्मान समारोह, अभिनंदन समारोह, विशेषांक निकाले परन्तु शायद ही कृतज्ञता , आनंदअनुभूति के दो शब्द किसी ने लिखा हो, परन्तु श्रीमती मेहरून्निसा ने तुम्हें जरूर लिखा होगा, प्रकाशित कर सको तो अच्छा लगेगा। फलदार वृक्ष ही भार से झुकते हैं, ये बात सिद्ध होगी।

बी.एन.आर. नायडू, नायडू मेंशन, जगदलपुर, बस्तर छ.ग.

आदरणीय नायडू सर, नमस्कार!

आपने मुझे जैसा पत्र प्रेषित किया है उसे पढ़कर एक ओर मैं खुशी से गद्‌गद् हो गया हूं, फूला नहीं समा रहा हूं; तो वहीं दूसरी ओर स्वयं को पाप का भागी मान रहा हूं कि एक शिष्य चाहे दुनिया में कुछ भी कर ले वह अपने गुरू के बाल बराबर भी नहीं हो सकता और आप.....! सर आप आदरणीय, पूज्यनीय हैं, भविष्य में इस प्रकार की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति से बचें वरना आप का ये नटखट शिष्य जिस पर इतना विश्वास कर रहे हैं अपने मार्ग से भटक सकता है। सर मैं जमीन से जुड़ाव महसूस करता हूं इसलिए इंजीनियरींग की पढ़ाई करने के बाद भी अपना शहर छोड़कर, अपने मां–बाप को छोड़कर बाहर नहीं जा सका। ठीक उसी प्रकार मैं अपनी भाषा से अंतरंगता रखता हूं इसलिए हमेशा हिन्दी के लिए लगा रहता हूं। हिन्दी के प्रति फैलाई जा रही नफरत हमें अपनी जमीन से अपने संस्कार से, अपने परिवार से तोड़ देगी, हमें कहीं का भी रहने न देगी। सर मैं हिन्दी में ही अपने व्यापार का पत्र–व्यवहार करता हूं। अंग्रेजी के फार्मों को हिन्दी में टाइप करके बाजार में मुफ्त में दे देता हूं जिससे वे ही प्रचलन में आ जायें। हमारे विभाग में बनाये जाने वाले रेखाचित्र, आदि का नाम पता हिन्दी में ही लिखता हूं। वर्तमान में आमजन मानकर चलते हैं कि ये सब अंग्रेजी में ही लिखना होता है। मेरे प्रयास से धीरे–धीरे ही सही कुछ तो हो रहा है।

यह समय दूसरों को देख कर नकल करके चलने का है, लोग सही या गलत खुद नहीं सोचते हैं, बस दूसरों को देखते हैं। आप जैसे विद्‌वान गढ़ने वाले शिक्षकों का शिष्य हूं इसलिए आगे तो बढ़ना ही है।

आपके अनुमान के अनुरूप ही पद्मश्री मेहरून्निसा परवेज़ जी का खत आ चुका है और ठीक आपके अनुमान के अनुसार उन्होंने अपना वक्तव्य भी दिया है। उनका पत्र हूबहू प्रकाशित भी कर रहा हूं। सर आपका आशीर्वाद सदैव यूं ही बना रहे। ***आपका सनत***

प्रिय भाई सनत कुमार जी,

'बस्तर पाति' का नया अंक मेरे हाथ में है, बता नहीं सकती मेरी क्या मनोदशा हुई। आपने तो इतिहास की तरह मुझे अमर कर दिया। तेज बुखार की सी हरारत लग रही है। सारा शरीर अतीत की ठंडी हवा से सिहर उठा है।

अतीत की ढेर–ढेर पुरानी बातें मक्खियों की तरह भिनभना रही हैं, जहां अकेले–तन्हा खड़े थे और टूट–टूट कर किरचों में बिखरे थे, क्या उस अनुभव को भूल सकते हैं ? लेकिन वहीं से जीवन का यह उतरती उम्र का इतना बड़ा सुख मिलेगा, नहीं सोचा था। मुझे तो जैसे सुरखाब के पर लग गये हैं।

मुझे बचपन से ही लगता था कि यह दुनिया केवल पुरूषों की है। आज महसूस किया कि दुनिया के कुछ पुरूष औरतों के हक में भी खड़े होते हैं। अल्लाह ने जहां दुख दिया, वहीं इतना बड़ा सुख दिया। हर दुख और सुख को मैंने अल्लाह की मर्जी समझकर स्वीकारा और उसे अपने शब्दों के साथ खमीरे की तरह गूंथ लिया।

बस्तर ने जहां दुख दिये, वहीं पहचान दी और आज आप सब का स्नेह पाकर सुख से निहाल हूं। मैं आदरनीय बी.एन.आर. नायडू जी की तथा आप सबकी अहसानमंद हूं। आज भी मुझे गिरजाघर के घंटों की आवाज सुनाई देती है, जहां मैं बचपन में स्कूल से आते समय आकाशनील के सूखे फूल बिनने जाती थी।

मेरा ढेर सारा स्नेह तथा शुभकानायें स्वीकारें! नववर्ष की बधाई!!

आपकी बहन मेरून्निसा परवेज़

आदरणीय दीदी जी, नमस्कार,

आप पर केन्द्रित अंक प्रकाशन की योजना मेरे मन में 'बस्तर पाति' के प्रकाशन के पहले से ही थी। मैंने पूर्व में ही एक सूची तैयार कर ली थी। भारतीय संस्कृति की सोच के अनुसार हम हमेशा अपने बुजुर्ग और गुरू का सम्मान करते हैं। उनकी चरण रज से स्वयं को धन्य समझते हैं और माथे पर लगाते हैं। इसलिये आपका सम्मान हम सब का फर्ज होने के साथ ही साथ हम सब के लिए आशीर्वाद की तरह है। आपका लेखन संसार और आपका जीवन संघर्ष अपने आप में ही एक किंवदन्ती है, जो हर किसी के लिए एक आदर्श है। आप पर केन्द्रित अंक संपादित करते हुए बहुत सी जानकारियां भी प्राप्त हुईं जिनसे आपके प्रति सम्मान और बढ़ गया।

और आपका बहुत बहुत धन्यवाद जो आपने पत्र लिख कर हमारा हौसला बढ़ाया। वरना इस प्रक्रिया को लोग एक 'रूटीन कॉलम' के रूप में लेते हैं। भविष्य में भी आपका स्नेह और आशीर्वाद बना रहेगा।

सनत जैन

भाई सनत जी, नमस्कार

आपकी पत्रिका का विवरण परिधि–14 जनवरी 2016 में पढ़ा था। इच्छा है कृपया 'बस्तर पाति' का कोई अंक भेजें। 'ककसाड़' झांसी में आती है देख लेता हूं। मेरी बस्तर पर केन्द्रित कुछ रचनाएं हैं। इनमें से एक 'आना कभी बस्तर' परिकथा के नवलेखन अंक में छपी थी। फिलहाल आपकी पत्रिका देखने पढ़ने की अधीरता है। मैं 'दैनिक विश्व परिवार' में दैनिक स्तम्भ आजाद कलम लिख रहा हूं। शेष शुभ।

प्रेम कुमार गौतम, 178, ईसाईटोला, झांसी–284003, उ.प्र.

आदरणीय प्रेम जी, नमस्कार

आपका अधीरता भरा पत्र पाकर मेरा मन भी अधीर हो गया आपसे बातें करने का परन्तु आपका फोन नंबर पत्र में नहीं था। आपकी रचनाओं का स्वागत है चाहे वे बस्तर केन्द्रित हों या न हों। लघुकथाएं भी भेजिए। पत्र का धन्यवाद। ***सनत जैन***

प्रिय सनत सस्नेह शुभकामना

साहित्य प्रकाशन के क्षेत्र में आपकी सेवाएं प्रशंसनीय ही नहीं स्तुत्य होती जा रही हैं। अरण्यधारा–2 का प्रकाशन मन वचन कर्म की समरसता से किया है। रचनाओं में परिपक्वता दिखाई देने लगी है। समीक्षा का तो क्या कहना। रचनाओं को आत्मसात करके लिखी समीक्षा ऐसी लगी जैसे स्वयं कवि अपने मन की बात कह रहा है। वस्तुतः जो वह स्वयं नहीं सोच पा रहा होगा वह वास्तविक भाव समीक्षा में व्यक्त कर दिखाया है। इसके लिए शाबासी के सिवाय क्या दूं ? 'यशस्वी भव'!

लेखकों/कवियों की कविता तो सामने आने लगी है। कहानी भी आनी चाहिए। अरण्यधारा–3 में कहानी हो। भले ही एक–एक ही हो। अरण्यधारा–4 में लेख आवे तो साहित्य की यह विधा–प्रतिभा भी प्रकाश में आ सकेगी। विचार करें। आग्रह नहीं है, सुझाव है। यह बस्तर के साहित्यकारों की विविध प्रतिभा–परिश्रम–अभिव्यक्ति को सामने लाने का सुझाव है। विचार अवश्य करें।

एक बात और–अपने और अपने कार्य की अपूर्णता खोजते रहिए इसमें पूर्णता की चुनौती या प्रेरणा नित नवीन होती रहेगी। यह जीवन का अद्भुत आनंद और स्फूर्ति है।

धर्मपाल सेनी, यशस्वी भव के आशीष सहित सप्रेम। माता रूक्मिणी सेवा संस्थान डिमरापाल, जगदलपुर

ताऊजी सादर चरण स्पर्श,

आप वंदनीय हैं, आपकी ऊर्जा वंदनीय है जो एक प्रकाश स्तंभ की तरह इस क्षेत्र को चुपचाप प्रकाशित कर चुकी है और आज भी कर रही है। आपका हर शब्द एक व्यापक संदेश की तरह है। आपके आदेश/आग्रह पर कार्य कर रहा हूं। बस्तर क्षेत्र के कहानीकारों को ढूंढा जा रहा है उन्हें तैयार किया जा रहा है अरण्यधारा श्रृंखला के लिए। अभी अरण्यधारा–3 हल्बी की कविताओं के लिए और अरण्यधारा–4 छत्तीसगढ़ी की कविताओं के लिए पूर्णता की ओर है। मेरी लिखी समीक्षायें आपको पसंद आईं ध न्यवाद। आप सभी साहित्यसेवियों का आशीर्वाद है जो इस लायक बन रहा हूं। ***सनत जैन***

आदरणीय सनत जी, सादर अभिवादन

आशा है आप सानंद होंगे। 'बस्तर पाति' का संयुक्तांक मिला। ध न्यवाद। पद्श्री मेहरून्निसा परवेज़ पर केन्द्रित इस विशेषांक में उनके व्यक्तित्व व कृतित्व पर विशेष सामग्री प्रकाशित कर पत्रिका के पाठकों को जो नव वर्ष का अमूल्य उपहार दिया है वह आप जैसे विद्वान व कुशल संपादक ही सोच सकता है। आप को मेरी हार्दिक बधाई। शेष सामग्री भी पठनीय, स्तरीय व प्रभावी। ***अशोक आनन, मक्सी–465106, जिला–शाजापुर, म.प्र. 9981240575***

आदरणीय जैन जी सादर प्रणाम,

आदिवासी क्षेत्र की लोकसंस्कृति एवं आधुनिक साहित्य को समर्पित उत्कृष्ठ त्रैमासिक पत्रिका 'बस्तर पाति' का कहानी पर केन्द्रित यह तीसरा अंक प्राप्त हुआ। इसका साहित्य पढ़कर मैं अभिभूत हूं। आवरण पृष्ठ के चित्रांकन से संस्कृति सजीव हो उठी है। चित्रकला कार्यशाला द्वारा निर्मित चित्र अत्यंत मनोरम हैं। कविताएं, कहानियां, लघुकथाएं, आलेख आदि सभी स्तंभ मनोरंजक एवं ज्ञानवर्धक हैं। साहित्य–संस्कृति के मनोहर संगम पर विविध विधाओं के महकते उपवन ने पत्रिका के स्तर में चार चांद लगा दिये हैं। पत्रिका शीर्ष संपादकीय है जो प्रेरणास्पद और साहित्यिक गतिविधियों के लिए मार्गदर्शक है वर्तमान परिवेश से जुड़े सामाजिक सरोकारों के प्रति सजग रहते हुए संपादक ने जो विचार प्रगट किये हैं, वे स्वागत के योग्य हैं। पत्रिका की साहित्य सामग्री को जिस कुशलता से सजाया है व प्रशंसनीय है। पत्रिका के उज्जवल भविष्य की शुभकामना के साथ आपको हार्दिक बधाई।

डॉ. सीताराम गुप्त 'दिनेश', गढ़ी परिसर, आलमपुर, जिला भिण्ड म.प्र. मो.–9770949528

आदरणीय अशोक आनन(मक्सी), डॉ सीताराम गुप्त 'दिनेश'(आलमपुर), अविनाश ब्यौहार 'उमरिया पान'(जबलपुर), धनेश यादव(नारायणपुर), अरूण कुमार भट्ट(रावतभाटा), श्रीमती माधुरी राऊलकर (नागपुर), दिनेश कुमार छाजेड़(रावतभाटा), कृष्णचंद्र महादेविया(सुंदरनगर), देव भण्डारी (कलिंगपोंग), लोकबाबू(भिलाई नगर), डॉ.नथमल झंवर(सिमगा), शिशिर द्विवेदी (बस्ती), प्रो. भगवान दास जैन(अहमदाबाद), किशोर तारे (रायपुर), नरेश कुमार 'उदास'(बनतलाब, जम्मू), हरिशचंद्र गुप्ता 'हरिश'(द्वारिकापुरी), सराफ सागरी(जबलपुर), डॉ. श्रीहरिवाणी(नौबस्ता), डॉ. जयसिंह अलवरी (श्रीगुप्पा) सादर अभिवादन!

आप सभी ने 'बस्तर पाति' को पत्र लिख कर हौसला अफजाई की है। 'बस्तर पाति' इसी स्नेह और प्यार का भूखा है। जिस प्रकार पेट की भूख भरपेट भोजन से तृप्त होती है उसी प्रकार पत्रिका की तृप्ति पाठकों, लेखकों के फोन, पत्र और रचनाओं की प्राप्ति से होती है। वर्तमान मोबाइल और इंटरनेट के दौर में पत्र का आना मिठाई और मेवों से भरे बड़े थाल की तरह महसूस होता है। आप सभी का मिठाई एवं मेवों के लिए बहुत–बहुत धन्यवाद। हमेशा अपना आशीर्वाद यूं ही बनायें रखें और 'बस्तर पाति' को प्राणवायु देते रहें। पत्रों को स्थान देने की हमेशा इच्छा होती है परन्तु स्थानाभाव के कारण सभी पत्रों को स्थान नहीं दे पा रहे हैं अन्यथा न लेंवे। अगले अंक से पाठकों की चौपाल तीन पन्नों की होगी। फिर हमारी आपकी बात देर तक चलेगी। शेष शुभ। ***आपका सनत जैन***

कहानी के तत्व : नाटकीयता और बुनावट

आज हम कहानी के दो प्रमुख तत्वों पर बात करना चाहते हैं। कहानी में नाटकीयता और कहानी की बुनावट। इन्हें अंग्रेजी में ड्रामा और टेक्सचर शब्द दिया गया है। हम आलोचकों की बातें सुनते आये हैं कि कहानी में टेक्सचर नहीं दिख रहा है, कम्पोजिसन संतुलित नहीं है और नाटकीयता अथवा ड्रामेबाजी अत्यधिक है। यह नाटकीयता से परे यह कहानी लिखी गई है।

हम विचार करेंगे कि क्या एक कहानी बिना नाटकीय हुए लिखी जा सकती है। नाटकीयता, ड्रामा अथवा ड्रामेबाजी से क्या अर्थ लगाया जाना चाहिए। उसी तरह कहानी की बुनावट अथवा उसकी भाषा की बुनावट या टेक्सचर कैसी है, और उनका कहानी से, अथवा कहानी के नाटकीय तत्व अथवा संरचना से क्या संबंध है । ये कहां तक जरूरी है और इन्हें हम कैसे समझें।

सबसे पहले हम इन्हें समझने का प्रयास करेंगे, एक तरह से परिभाषित करना चाहेंगे। कला का कोई रूप हो, यथा–कहानी, कविता, उपन्यास, आलेख, चित्रकला, नृत्य अथवा संगीत–इन तमाम में ये ड्रामाई तत्व, बुनावट और संरचना घुले–मिले होते हैं। किसी की आवाज ड्रामाई हो सकती है, किसी के भाषण में टेक्सचर मिसिंग हो सकता है, किसी संगीत का कम्पोजिसन साधारण या उत्कृष्ठ हो सकता है। नृत्य और चित्र अथवा संगीत कला की आलोचना क्या, समीक्षा तक संभव नहीं।

ये सारे तत्व कथा–कर्म में इस प्रकार घुले–मिले होते हैं कि इन्हें समझना या पृथक करना एक टेढ़ी खीर ही प्रतीत होता है। ये एक तरह से रासायनिक विश्लेषण है–महज भौतिक परीक्षण नहीं कि देख–सूंघ व चाटकर किसी निष्कर्ष पर जा पहुंचे। उसी तरह कहानी में नाटकीयता और टेक्सचर, जिसे भाषा की बुनावट द्वारा संभव किया जाता है–एक दूसरे में कब घुल–मिल जाते हैं–पता ही नहीं चलता। आगे हम उदाहरण सहित इस पर विचार करेंगे।

कहानी में नाटकीयता क्या है। यह कितना और क्यों जरूरी है। नाटकीयता शब्द आते ही आधुनिक आलोचक/समीक्षक/लेखक नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। इसका सीधा मतलब है चीजों को हमने ठीक से नहीं देखा है – पुनः परिभाषित नहीं किया है। सिर्फ इतना कहना पर्याप्त होगा कि दुनिया की सर्वश्रेष्ठ रचनाएं, महाकाव्य नाटकीय तत्वों से भरे हैं। हमारा मिथकीय साहित्य तो नाटकीय तत्वों से ओत प्रोत है।

वह तेज कदमों से बाजार जा रहा था। घर में मेहमान आये थे –मां ने कहा कि मिठाई लाना–जल्दी। पर जाने कहां से उस बेलगाम साइकिल सवार ने उसे धक्का मार दिया। वह गिर पड़ा, उसका चेहरा रूआंसा हो गया–उसके घुटने छिल गये थे और खून निकल आया था। कुछ लोग इकट्ठा हो गये थे। 'इसे जल्द अस्पताल ले चलो, जख्म गहरा है।'–कोई कह रहा था।

इस पैराग्राफ में नाटकीय तत्व दिखाई दे रहा है। क्या ऐसी नाटकीयता या अनहोनी अवास्तविक है ? नहीं। केंद्रीय पात्र के दिमाग में बाजार, मिठाई और जल्द घर लौटना, मेहमान ये तीन–चार बातें (मां का आदेश भी) ध्वनित हैं केंद्रीय पात्र नहीं, वे समस्त पाठक जो कहानी पढ़ रहे हैं मुख्य पात्र की संवेदना के साथ हैं। पात्र के साथ पाठकों की पूरी सहानुभूति है। मगर ये क्या–एक बेपरवाह साइकिल वाला ठोककर चल दिया। अब क्या ? क्या केंद्रीय पात्र जख्मों की परवाह किये बगैर बाजार जाएगा और काम पूरा कर घर वापस आएगा। या अस्पताल जाएगा और फिर बाजार, मिठाई ? या आगे क्या होने वाला है– बच्चे का जख्म, मरहम पट्टी या घर के मेहमान, मां की मेहमान नवाजी ? या फिर कोई और संभावना ?–ऐसे कई कोण हैं मानो एक चतुर्भुज में दो बिन्दुओं को मिला देने से कई चौहद्दी या कोण निकल आएं। नाटकीयता अथवा घटनाएं ये उन बिन्दुओं की तरह होती हैं जो कहानी–कला में अपार संभावनाएं पैदा करती हैं। अब क्या आगे–? ये भाव सिर्फ नाटकीय घटना के कारण ही आया, अब लेखक महोदय पर निर्भर है वे अपने किस पात्र से, परिस्थिति से, गौण पात्रों से क्या कहलवाना चाहते हैं।

बहुत सारी कहानियों में पात्र मर जाता है, बीमार पड़ जाता है, असाध्य बीमारी से ग्रस्त हो जाता है–प्रेमी–प्रेमिका मिल जाते हैं अथवा पृथक हो जाते हैं–घर की पत्नी चालीस साल पति के साथ रहने बाद अचानक घर छोड़ देती है–तलाक चाहती है–इत्यादि कहानी के नाटकीय तत्व हैं। ये नाटकीय तत्व अत्यंत स्थूल हैं और इन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है। ऐसे तत्व कितने आवश्यक हैं–नहीं हैं–ये कहानी में लेखक द्वारा कहानी से किये गये निर्वाह पर निर्भर करता है। अपनी नाटकीयता को कहानीकार ने कितना विश्वसनीय बनाया ? सवाल नाटकीयता से नहीं, सवाल इसके प्रयोग की विश्वसनीयता का है।

महान् कहानियां नाटकीय तत्वों का खूब दोहन करती हैं–पर वे स्थूल रूप से उतना नहीं जितना सूक्ष्म, हमारे या पात्रों के मनोभावों के मार्फत करती हैं। कुछ नाटकीय तत्व तो अति सूक्ष्म होते हैं और जिन्हें इंगित कर पाना मुश्किल हो जाता है। महान् चेखव की एक कहानी याद आ रही है जिसमें नायक–नायिका किसी ऊंची जगह से नीचे साथ–साथ

उतरते हैं–यह रोमांचक है जिसमे नायिका कहती है उसे ऊंची जगह डराते हैं। वह भयभीत है। नायक उसे मना लेता है। डर और भय के बीच नायक–नायिका साथ–साथ तेजी से नीचे उतरने का मजा लेते हैं। ठीक प्रवाह के मध्य में नायक नायिका से हौले से अपने प्यार का इजहार करता है जिसे संभवतः नायिका सुन नहीं पाती है या अनसुनी रह जाती है या सुन–समझकर भी कुछ और स्पष्टता चाहती है और फिर वे दोनों एक बार फिर से नीचे प्रवाहित होने का खेल खेलते हैं। नायक अपना प्रेमभरा शब्द फिर से फुसफुसाता है और नायिका इसे समझ पाने की अनभिज्ञता जाहिर करती है। यह खेल और चलता है। नायिका का भय जाता रहता है।

कहानीकार प्यार के इजहार या प्यार के रोमांच को बड़ी खूबसूरती से दिखाता है। कहनेवाला ठीक से, स्पष्टता से इजहार नहीं कर पाता और सुननेवाला /वाली ठीक से, स्पष्टता से सुन नहीं पाती। और यह सिलसिला खत्म नहीं होता।

रही बात नाटकीयता की तो ये सम्पूर्ण कहानी ही सूक्ष्म ड्रामें से भरी पड़ी है। पात्रों के मनोभाव किस तरह बदलते हैं–इसे पढ़कर ही समझा जा सकता है। यों कहें कि इस कहानी में चेखव ने सारी परिस्थिति ही नाटकीय रूप से रची है। सारा वातावरण नाटकीय है। चेखव की ही एक अन्य कहानी की चर्चा करना चाहूंगा (शीर्षक याद नहीं) जिसमें एक टांगेवाला का जवान बेटा मर गया है पर जीवन की सच्चाई उसे विश्राम नहीं लेने देती। पर दुख है–वह अभिव्यक्त करना चाहता है मगर संवेदनहीन दुनिया को उसके सुख–दुख से कोई मतलब नहीं। आखिर में वह बूढ़ा पात्र अपने घोड़े को अपना बेटा खोने की दास्तान सुनाता है। यह करूण कथा है। मानवीय संवेदनहीनता या गरीब के जीवन की कठोर सच्चाई है। नाटकीयता ? देखा जाए तो कथा में नाटकीय तत्व भरे पड़े हैं। मगर यह तत्व स्थूल रूप से नहीं आया है कि कहानी के बीच में उसका बेटा मरा या आखिर में। कहानी आरंभ ही होती है बेटा खो देने के दुख से। यहां मृत्यु है मगर मृत्यु जैसी आकस्मिक घटना को नाटकीय नहीं बनाया गया है। बल्कि उसके दुख, मृत्यु उपरांत हुए शोक की यह दास्तान है। नाटकीय तत्व तब दिखता है जब सुबह से शाम तक अनेक बार वह बूढ़ा प्रयास के बाद भी अपनी पीड़ा व्यक्त नहीं कर पाता। कुशल कहानीकार जिस कौशल से परिस्थितियों का चित्रण करते हैं–कहानी विश्वसनीय बनाते हैं–वह देखने लायक है। अंततः घोड़े को अपनी व्यथा सुनाना! क्या ये नाटकीय तत्व नहीं है ?

जरा कल्पना करें इस भाव को व्यक्त करने के लिए कहानी की रचना दूसरे तरीके से करते–यथा इस तरह रचते कि बूढ़े टांगेवाले का बेटा जो जवान है, बहुत आज्ञाकारी और उद्योगी है। वह बड़ी मुश्किल समय में अपने पिता की खूब मदद करता है। और कहानी का अंत आते–आते बूढ़ा बाप अपना जवान बेटा खो देता है। बीमारी से या किसी कारण मृत हो जाता है।

मृत्यु जीवन की बड़ी नाटकीय घटना है। इसे सब देखते व समझते हैं–पर इस टेकनीक से क्या कहानीकार वो संवेदना पैदा कर पाता ? असल में तब यह मृत्यु की कहानी होती, जबकि चेखव ने मृत्यु के बाद उत्पन्न शोक–दुख की कहानी लिखी है–लेखक की संवेदना उससे आगे जाकर बताना चाहती है कि बेटे के मृत्यु का शोक भी जीता है–वह उससे भी अधिक एक गाढ़ी लाइन खींचते हैं कि इस दुनिया को उसके शोक–गम की परवाह नहीं!

नाटकीयता को अगर एक लाइन में परिभाषित करना चाहें तो यह कहना समीचीन होगा कि–जिसकी हमें उम्मीद नहीं /चौंकानेवाली घटना /आश्चर्यजनक /अविस्मरणीय! अद्भुत! ऐसा कैसे हो गया!

याद कीजिए महान प्रेमचंद की कथा–पूस की रात! कहानी का अंत आते–आते एक किसान मजदूर बन जाने की स्थिति में है। वह लगान नहीं पटा पाएगा। उसका खेत नील गायें चर गयीं। अब जीविका के लिए उसे मजूरी करनी पड़ेगी। किसान मजदूरों से बेहतर स्थिति में थे। मगर एक किसान कथा के अंत में प्रसन्न है–मजदूर बनकर! प्रसन्नता की कोई बात नहीं–यह तो शोक मनाने वाली बात है। मगर कथा पाठक अच्छी तरह समझ जाते हैं कि कहानी का पात्र शोक मनाने की जगह क्यों प्रसन्न है। यह कितनी बड़ी नाटकीयता है। और इसी नाटकीय तत्व ने क्यों और कैसे का सारा विश्लेषण खोल दिया है। गुलाम भारत में कितनों की दयनीय दशा, उनके पतन की कहानी को दर्शानेवाली यह कहानी मील का पत्थर साबित होती है।

उसी तरह प्रेमचंद की 'ईदगाह' को याद कीजिए। हामिद के मन में पल–प्रतिपल उठते भाव नाटकीय प्रवाह के बेजोड़ चित्रण हैं। वह बच्चा है, मगर कम पैसे होने के कारण किसी बूढ़े की तरह सोचता है। और आखिर में एक खिलौने के रूप में वह 'चिमटा' क्रय करता है और वह उस चिमटे को सभी खिलौनों पर हावी होना साबित करता है। यह अतिश्योक्ति है। एक बच्चा, बच्चा नहीं बूढ़ा बन जाता है। कितना बड़ा ड्रामा! आश्चर्य!

आप तमाम दुनिया की कालजयी कहानियां उठाएं–वे ड्रामा तत्व से भरी पड़ीं हैं। असल में कहानी व ड्रामा एक दूसरे से अभेद हैं–गूंथे हैं। हम उन्हें कैसे अलग कर सकते हैं। क्या आप कहानी में 'नाटकीयता' अधिक होने जैसी बात

करना चाहेगें ? वास्तव में जब कोई आलोचक, समीक्षक या संपादक–पाठक किसी कहानी में ड्रामा शब्द का इस्तेमाल कर उसकी निन्दा करता है–दरअसल उसका आशय इस तत्व की अविश्वसनीय शैली से है। लेखक ड्रामाई सीन्स् को, दृश्यों को विश्वसनीय तरीके से प्रस्तुत नहीं कर पाया है। कहानी, कफ़न, बूढ़ी काकी, उसने कहा था, पंच–परमेश्वर, द रिंग (मोपासां) और कितनी ही श्रेष्ठ कहानियां हमारे समझ मौजूद हैं जो इस बात का पुख्ता प्रमाण हैं।

ऐसी कहानियों–खासकर पश्चिम में मान्यता दी गयी है जो सिर्फ जीवन के 'स्लाईस ऑफ लाइफ' का वर्णन भर करती है। ये फ्लैट कहानियां होती हैं–सपाट! इनकी गहराई जानने के लिए ऐसी कहानियों के स्थल, देश की परम्परा, भाषा–शिक्षा इत्यादि की गहरी जानकारी आवश्यक है। ये 'स्लाइस ऑफ लाइफ' जीवन का एक वर्णन या चित्रण होती हैं–शेष भागों को पाठकों के लिए छोड़ दिया जाता है कि वे इनका अपने अनुसार मनचाहे कैनवस पर फिट कर लें। याद नहीं कि इनमें कुछ कालजयी रचना के तौर पर भी स्थापित हुई। (यह इस लेख के लेखक की कमतरी भी हो सकती है।) ऊपर चेखव की ऊंचाई से नीचे आने व प्रेम की अभिव्यक्ति करने वाली कहानी सरसरी तौर पर 'स्लाईस ऑफ लाइफ' सी प्रतीत होती है–परंतु ऐसा नहीं। पाठक स्वयं विश्लेषण करें।

कहानी में नाटकीय तत्वों को बताने या दर्शाने के लिए 'विश्वसनीयता' आवश्यक है और यहीं कहानी की भाषा या कहानी के टेक्सचर, बुनावट की बात खड़ी होती है।

मुहल्ले में चोरी की वारदात हो गयी थी। पूछताछ के लिए कुछ संदेहियों को थानेदार ने तलब किया। उसे पता था यह काम मंगू चोर का ही हो सकता है। पर मंगूआ तो टेसुआं बहा रहा था। आंसू के फव्वारे छोड़ रहा था। ''मैंने नहीं किया साहब! ये काम मेरा नहीं... ।''

थानेदार ने डंडा उठाया–''साले चार पड़ेगी सब उगलवा लूंगा, ड्रामेबाजी बंद कर....मादरजात... ।''

''बताता हूं साब..बताता हूं...अब और न मारो.... ।''

थानेदार ने 'ड्रामेबाजी' शब्द का उल्लेख किया। स्पष्ट है वह जानता है यह मंगू चोर का ही काम है मगर अपना अपराध छिपाने के लिए आंसू और अपनी मासूमियत का सहारा लेता है। जो सत्य नहीं। यह 'एक्टिंग' ही ड्रामेबाजी है।

कहानियों में जो घटनाएं अविश्वसनीय तरीके से आयेंगी, लेखक किस ऊंची फिलोसॉफी, विचार से प्रेरित होकर महान आदर्श की कथा रचेंगे तो वैसी कहानियां थानेदार द्वारा प्रयुक्त शब्द 'ड्रामेबाजी' से अधिक और कुछ नहीं। यहां पाठक ही थानेदार है और ऐसे ड्रामेबाज कहानीकारों की महान आदर्श या एजेण्डाबद्ध जबरदस्ती आरोपित कहानियां सिर्फ एक ड्रामा!

कहानियों में ड्रामाई तत्व घुले–मिले हों ऐसा कि पाठकों को पता ही न लग सके कि नाटक घट गया। स्वाभाविक, सहज! इसके लिए लेखक को अपनी भाषा सजग रखनी होती है। भाषा का उल्लेख करते ही प्रतीत होने लगता है–स्वर्णमय किरणों सी.., स्वर्णयुक्त पीली धूप सी..., मोतियों की माला सी... उनकी केशराशि काली सर्पिणी सी...उनके होंठ संतरे की फांक सी....उनकी हंसी मोतियों की लड़ी के समान चमकती....!

सावधान!

भाषा वैज्ञानिक तो बिल्कुल सावधान हो जाएं वरना कहानी का टेक्सचर जाएगा भाड़ में!

बच्चा गढ्ढे में लुढ़क गया था। उसे घुटने के पास दर्द का अनुभव हुआ। अरे.. यह तो खून है! वह जख्मी है। रास्ते पे आते–जाते कुछ लोग इकट्ठे हो गये थे। ''...जख्म गहरा है, अस्पताल ले चलो...जल्दी।'' कोई कह रहा था–''पकड़ साले को.....ठोकर मारकर भाग गया..... ।''

बच्चा सोच रहा था–मुझे जल्दी घर लौटना है, मां इंतजार कर रही होगी...मेहमान आए हैं।

कहानी एक मोड़ पर आकर थम गयी है–आगे क्या..? और इसे चित्रित करने के लिए भाषाविज्ञ नहीं, चित्रकार की नजर चाहिए। परिस्थितियां और पात्रों की मनःस्थितियां स्वतःस्फूर्त तरीके से बिना भाषाई ड्रामें के प्रस्तुत हो जाए। वरना कहानी की बुनावट या टेक्सचर गड़बड़ा जाएगा और कहानी अपना प्रभाव छोड़ देगी।

जरा गौर करें–

उस उगते सूरज के आगे न जाने कहां से काले व मनहूस बादल अचानक किसी दुःस्वप्न की तरह छा गये। वह तो अपनी मंजिल की ओर अपने पथ पर सूर्य के समान अग्रसर था। उसके पांवों में मानो सूरज के सातों घोड़ों की ताकत आ गयी थी। उस आज्ञाकारी पुत्र को उसकी ममतामई मां की आज्ञा सिरोधार्य करनी थी। उसी ममतामई आंचलवाली मां ने उसे पाठ पढ़ाया था कि मेहमान भगवान होते हैं...। उसी मां को अब उसकी प्रतीक्षा हो रही होगी जिस तरह प्रथम वर्षा ऋतु के आगमन की प्रतीक्षा चाक पक्षी करते हैं। जिस तरह जेठ की प्यासी धरती काले बादलों की प्रतीक्षा करती है। मगर उसे तो अस्पताल जाना पड़ सकता है। इत्यादि।

अब इस अंदज में लेखक लिखेंगे तो कहानी की बुनावट तो गई। हम अनभिज्ञतावश लेखक अल्पज्ञान, भाषा–अज्ञान

इत्यादि नाम देंगे। फर्क स्पष्ट है। लेखक यदि इस घटना का स्थूल चित्रण (दृश्यों में) नहीं करना चाहता है व पात्र के मनोभावों को ही दर्शाना चाह रहा है तो भी 'टेक्सचर' की मर्यादा बनाये रखी जा सकती है–शर्त है मन का विचार स्वाभाविक तरीके से प्रस्तुत हो।

ऊपर की लच्छेदार भाषा में लेखक कहानी के 'मूल' से 'फोकस' या 'केन्द्र' से अपने पाठकों को दूर ले जा रहा है। और कहानी ड्रामे की तरह प्रतीत होने लगती है। कहानी की 'बुनावट' असफल हो जाती है।

कहानी की बुनावट क्यों महत्वपूर्ण है–जिसे कहानी या भाषा का टेक्सचर कहना उचित होगा।

कहानी एक अत्यंत लघु कलात्मक विधा है। यहां एक पंक्ति भी फिजूल हो सकती है। यहां दृश्य, मनोभाव, परिस्थिति, घटनाएं इत्यादि बड़ी तेजी से बदलती हैं। जिस तीव्रता व शीघ्रता से ये सभी परिवर्तित होते हैं, उसी शीघ्रता व तीव्रता से भाषा–बोली या वर्णन की शैली भी परिवर्तित हो। कहानीकार कभी भी एक शैली में कहानी नहीं बुन सकता (अपवाद छोड़ दें।) यहां तो सेटिंग, मनोभाव के साथ हर पैराग्राफ एक चुनौती की तरह होते हैं।

उसे बड़ी जोर की भूख लगी थी। काम तो नहीं मिला मगर जमकर भात खाया जाए। आज मुर्गे की टांग तोड़ दूं। वह सोच ही रहा था कि सामने उसे अली बिरयानी सेंटर दिखाई पड़ा। उसके बोर्ड पर ही कूकडू–कूं का चित्र था। अहा! चूल्हे में पकी बिरयानी और ताजे चिकन की खुश्बू हवा में तैर रही थी। उसकी इच्छा दोगुनी हो गयी।

वह रेस्टोरेंट कब प्रवेश कर चुका उसे ज्ञात ही नहीं हुआ, एक कोने की मेज पर भी जा बैठा था। अचानक मेज पर मुर्गे की टांग उसे नजर आई। भात के दाने भी मेज पर इधर–उधर बिखरे पड़े थे। उसका मन खट्टा हो गया। सामने टेबल पर पोंछा लगाते लड़के पर उसका गुस्सा फूटा–'लौंडे....क्या मेरी खातिर रख छोड़ा है।' फिर मैनेजर की ओर रूख किया–'ये टिंग–टांग अपने ग्राहक वास्ते है...क्या मैं पोंछा मारूं..... ।'

'गुस्सा क्यों करते हो साब, लौंडा साफ तो कर रहा है, चिकने! टेबल पर आ जाओ न....!' मैनेजर ने बात सम्भालने की कोशिश की।

'अब क्या स्वच्छता अभियान चला रहे हो, यहां मीठा तो कड़वा हो गया... ।' उसका गुस्सा फूटा। एक तो उसका दिन पहले से ही खराब था, आज उसे कोई काम न मिला था, उस पर भूख और ये सब। उफनते दूध पर पानी पड़ चुका था।

वह बाहर का रूख किया। मैनेजर भी उसी लोचे का बना था, देखा कि यह ग्राहक नया है और रूकने वाला नहीं, टंटा कस दिया–'भाई साब पूरी सफाई चाहिए तो फाईव स्टार होटल चले जइयो... ।'

वह तिलमिला उठा.... ।

एक और उदाहरण–

वह मारनिंग वॉक पे था। शीतल हवा और पक्षियों के चहचहाहट की आवाज का वह आनंद ले रहा था। कितना प्यारा सबेरा है! उसने सोचा। तभी–सड़क के पास से ही एक स्कूटी गुजरी। उसपे स्कूटी वाली सवार थी–खुले बाल और वो सब जो एक झलक देख पाया–बड़ी कशिश पैदा हुई। सड़क संकरी थी–वह कुछ दूर तक उस एक झलक के ख्याल में खोया रहा और हवा में फैली खुश्बू उसके सबेरे के दृश्यों, पक्षियों के कलरव, हवा की शीतलता, सभी का सत्यानाश कर दिया। वह स्त्री और उसकी कशिश, खुशबू। बस...., उसका मस्तिष्क कुछ और सोच ही नहीं पा रहा था।

उक्त दोनों पैराग्राफ के उदाहरण से कथा में (कहानी के मार्ग में) मोड़ आता है–आंतरिक, बाह्य। कहानी का टेक्सचर बदल जाता है। भाषा का अंदाज बदलता है।

कहानीकार को भाषा/कहानी के टेक्सचर पर क्यों ध्यान देना चाहिए ? असल में यही वो महत्वपूर्ण तत्व है जिसके मार्फत कहानी लचीली, सजीव और विश्वसनीय बनती है। यही नहीं, सटीक टेक्सचर से पाठकों के भाव और कहानी के भाव घुल–मिल जाते हैं। पाठक को लगता ही नहीं कि कहानी कही जा रही है–उसे लगता है शब्दों के मार्फत सबकुछ सामने घटित हो रहा है। दिख रहा है। टेक्सचर के प्रति सावधान कहानीकारों का भाव पक्ष बहुत मजबूत होता है। वह पल–पल कहानी में आये दृश्यों, पात्रों, घटनाओं इत्यादि का भाव पक्ष बड़ी कुशलता से रखता है। जो कहानीकार इस शैली में कहानी कहने से चूक जाते हैं–या जहां संभावनाएं तो होती हैं मगर कहानीकार ने उन संभावनाओं का दोहन नहीं कर पाया–वह कथा बेजान ही होगी–कहने की आवश्यकता नहीं।

ये बनावट या टेक्सचर कला के ही रूप होते हैं–चाहे वह चित्र हों, संगीत हों, नृत्य हों....इत्यादि। अभिनय कला में भी छाया और उससे संबंधित भावों का टेक्सचर बहुत मायने रखता है। बिना नाटकीयता और उनका शानदार निर्वाह (टेक्सचर के) कोई अभिनय शैली शानदार नहीं हो सकती।

जीवन पूरी तरह नाटकीयता से भरा है–क्या यह जीवन सपाट है! प्रकृति सपाट है! कतई नहीं।

कहानी लिखना/बुनना सपाट मैदान पर चलने सरीखा नहीं होता। वह ऊंचे पहाड़/पहाड़ी की चढ़ाई है जहां पग–पग रास्ते अनगढ़, उबड़–खाबड़ और रहस्य रोमांच से भरे हैं।

कहानी को आप इस नजर से पढ़ना या लिखना चाहेंगे ? चुनाव आपका है।

कहानी की बुनावट, नाटकीयता की बात चली है तो इसी के करीब कहानी की सेटिंग या कहें दृश्यों की रचना का एक महत्वपूर्ण तत्व सामने आता है। जैसा पहले लिखा जा चुका है–ये सारे तत्व भौतिकी का विषय नहीं बल्कि एक रसायन बन चुके तत्व हैं। घुले–मिले अतः कई बार ऐसा प्रतीत होगा कि ये सभी तो एक ही चीज हैं–इनमें क्या फर्क है। मगर फर्क है।

कहानी के दृश्य, दृश्यों या सेटिंग पर अवश्य पृथक से लिखना चाहूंगा। इसका भी संबंध एक साथ कहानी के ड्रामाई तत्व और कहानी के टेक्सचर से होता है। सेटिंग या दृश्य जहां अमुक समय पर अमुक कहानी अपने पात्रों के माध्यमों से अंतःक्रिया कर रही है ऊपर के उदाहरण में मारनिंग वॉक पर गये पात्र का दृश्य सबेरे का है। पक्षी चहचहा रहे हैं। हवा शीतल है। मगर एक घटना (स्त्री का स्कूटी पर जाना) घटती है और वहां भाषा/कहानी का टेक्सचर बदल जाता है। मगर दृश्य वही है। सेटिंग वही है। पात्र का दिमाग या मनोदशा कहीं और 'सेट' हो गयी है।

इसमें गहरी लकीर जैसा अंतर दिखाने के लिए आप दोनों भावों व दृश्यों को जितना सजग होकर रखेंगे, प्रभाव उतना गहरा और सजीव होगा। पात्र के अंदर के मनोभाव को दर्शाने के लिए आपको सुन्दर सुबह का वर्णन करना होगा। यह वर्णन अनावश्यक नहीं, एक सजग कलाकार के मास्टर स्ट्रोक के तौर पर देखा जाना चाहिए।

इसी तरह बिरयानी सेन्टर में भी दृश्य एक है मगर दो तरह के भावों (पात्र के) से हमारा नाता होता है। यहां भी आपको यदि एक भाव को अच्छे से दिखाना है तो दृश्य के चित्रण पर जोर देना होगा।

अब दृश्यों का वर्णन कितना और कैसे करें। इस पर फिर कभी विस्तार से चर्चा समीचीन होगी–मगर इतना भी नहीं कि आप कड़ाही, होटल की लम्बाई, टेबल–कुर्सियों की संख्या, काम करने वाले नौकर का हेयर कट और कमीज का रंग लिखने लग जाएं। और वर्णन इतना भी कम नहीं कि पात्र कब होटल में घुसा पाठक को पता ही नहीं चल पाया। या घुसा तो बड़ा होटल है, ढाबा है, फाइव स्टार होटल है, मालूम ही नहीं पड़ा।

ऊपर के उदाहरण में कहानी के दृश्य की महत्ता समझाने का प्रयास किया गया है। एक बात और–जैसा अभी–अभी कहा गया है कि कहानी लेखन पहाड़ी मार्ग है। पल–पल पत्थर, बोल्डर और गढ्ढे मिलेंगे। सो सावधान।

अकसर कहानी में पात्र या कहानी एक वातावरण (दृश्य) से दूसरे वातावरण में विचरण करता है। यह बहुत स्वाभाविक है–मगर इस लेख के लेखक ने देखा है कि खासकर हिन्दी कहानियां इस वातावरण के चित्रण, परिवर्तन को रेखांकित करने में बेहद कमजोर हैं। हिन्दी की दुर्दशा है कि कहानियां सिर्फ 'उद्देश्परक'–'एजेण्डाबद्ध' लिखी व छापी जाती हैं–इन्होंने मान लिया है कि कथा–कर्म एक कला–कर्म तो है ही नहीं। यह सरासर हमारी भूल है और जितनी जल्दी हो हम इस भूल से निकल सकें अच्छा होगा।–हिन्दी कथा साहित्य के लिए भी और हिन्दी कथाकारों के लिए भी।

एक विद्यार्थी बंद कमरे में सबक याद कर रहा है। भीतर उमस है। शाम भी हो चुकी है। उसका जी बेचैन है। वह जल्द से जल्द सबक याद कर बाहर खुली हवा में जाना चाहता है। आखिरकार उसे लगता है कि अब बहुत हुआ–पहले बाहर घूमा जाय। वह बाहर आता है। वह कैसा महसूस करेगा ? वह कैसे दृश्य देखना चाहेगा। शायद आकाश की ओर। शायद खुली हवा को अपने चेहरे पर महसूस करना चाहे। वह किताबों के निष्ठुर शब्दों की दुनिया के विपरित वृक्षों–पत्तों और गगन में विचरते पक्षियों को देखना पसंद करे। या किसी प्रिय मित्र से गप्पे लड़ाये।

उक्त दोनों तरह के दृश्यों में कहानी की सेटिंग एक स्थान (बंद कमरे) से दूसरे स्थान में परिवर्तित हो रही है। लेखक एक सांस में, हांफते हुए अपनी कहानी लिखता जाता है। उसे बंद कमरे की बेचैनी व खुली हवा में जाने की इच्छा को पाठकों को सिर्फ बताकर चलता बना। कहानी आगे बढ़ा दी गयी। जब तक स्वयं लेखक नहीं रूकेगा, ऐसे दृश्यों पर थोड़ा ठहरेगा नहीं, तो कहानी विश्वसनीय कैसे बनेगी। सिर्फ महान एजेण्डा ठोंकने से ?

कहानी में जब स्थूल या सूक्ष्म रूप से उसकी सेटिंग बदलती है तो अवश्य है कि कहानी–भाषा का टेक्सचर भी बदले, पाठकों के मनोभाव (पात्रों के माध्यम से) भी बदले और तब कहानी की नाटकीयता बड़ी विश्वसनीय तरीके से हमसे होकर गुजरेगी–ऐसा कि इसका आभास भी न होगा। सबकुछ यथार्थ सजीव लगेगा।

जरा गौर करें–

–एक लड़की सुपर मॉल गयी। उसने खूब महंगे सूट खरीदे–वे उसकी पसंद के थे। उसने बिल अदा किया और कार पर बैठकर घर वापस आ गयी।

क्या ये कहानी है ?

–एक लड़की सुपर मॉल गयी, उसने अपनी पसंद के महंगे सूट खरीदे। उसने बल अदा किया और कार पर बैठ कर घर की ओर चल पड़ी। अचानक उसने अपना बैग टटोला–अरे! पर्स तो गायब है। वह शायद वहीं छोड़ आई!

'ड्रायवर! गाड़ी मोड़ो...।'

यहां कहानी की संभावना है क्योंकि घटना /ड्रामा घट चुका है। हो सकता है सेल्स एक्सक्यूटिव उसका पर्स सम्भाल कर रखा हो और उसके साथ एक नयी कहानी की शुरूआत हो...., हो सकता है पर्स मिले ही नहीं...मिले भी तो पैसे गायब।

–एक व्यक्ति रिटायर होकर हिमालय चले गये। एक छोटा घर खरीदा और जवानी में अर्जित पैसे से दिन बिताने लगे।

यहां कोई कहानी नहीं।

–एक व्यक्ति रिटायर होकर हिमालय जा बसे। एक छोटा घर खरीदा और जीवन के आखरी मकसद को पूरा करने में लग गये–आत्मा की तलाश। परमात्मा की तलाश!

कहने का अर्थ यह है कि बुनियाद या प्लॉट ही ड्रामाई होता है। असल है उसका विश्वसनीय चित्रण!

नसीहत

मैंने,
एक भ्रष्टाचारी
की लानत
मलानत की...!
और
ऊपर से
अच्छी
नसीहत दी...!
उसने कुढ़कर
भुन्नाकर
कहा कि
आप हैं
दरअसल
हमारी राह
के कांटे...!
तो जवाब
में मैंने
उससे
दो टूक
बात कही कि
उल्टा चोर
कोतवाल को डांटे....!

भेद

भ्रष्टाचार
और आतंकियों
में जरा
भी नहीं है भेद...!
क्योंकि
दोनों का
खून हो गया है
सफेद...!

अठखेलियां

देश जाये
भाड़ में
जाति–धर्म
की आड़ में
विप्लव हो
रहे हैं,
और
चल रहीं हैं
धांय–धांय
गोलियां...!
लेकिन
ऐसे
समय भी
हमारे
जनप्रतिनिधि को
सूझ रही हैं
अठखेलियां....!

रंगभेद

रंगभेद नीति
अपना असर
दिखा रही है...!
तभी तो गोरी पत्नी
और काले पति के
बीच
तू–तू, मैं–मैं
की नौबत
आ रही है....!

अविनाश ब्यौहार
'उमरिया पान.'
86–रॉयल एस्टेट कॉलोनी
माढ़ोताल, कटंगी रोड
जबलपुर–482002
मो.–9826795372

एक मुलाकात : पद्मश्री धर्मपाल सेनी

'एक मुलाकात' व 'परिचय' श्रृंखला में इस पिछड़े क्षेत्र से जुड़े हुए और क्षेत्र के लिए रचनात्मक योगदान करने वाले व्यक्ति के साथ बातचीत, उनकी रचनाओं की समीक्षा, उनकी रचनाएं और उनके फोटोग्राफ अपने पाठकों के साथ साझा करेंगे।

24 जून सन् 1930 जन्मे आदरणीय 'ताऊजी' बस्तर क्षेत्र में स्त्री शिक्षा में अपने योगदान के लिए हमेशा याद किये जाते हैं। हमारे 'ताऊजी' समाज सेवा के लिए अपना जीवन न्योछावर कर चुके हैं। बस्तर जिले में जगदलपुर ब्लॉक के ग्राम डिमरापाल के आश्रम माता रूक्मिणी संस्थान में ही योगी की तरह रहते हुए आदिवासी बालिकाओं के लिए जी रहे हैं। उनकी शिक्षा के साथ–साथ खेलकूद, नृत्य, वादन आदि अनेक रूचियों के विकास पर भी काम कर रहे हैं। उनकी उपलब्धियों का आंकलन करते उनके कक्ष में हजारों की संख्या में सम्मान एवं पदक लगे हैं। सुबह चार बजे से उनकी शुरू होने वाली दिनचर्या योग, ध्यान और शारीरिक श्रम के साथ दिन भर लगातार बगैर विश्राम चलती रहती है। आज भी एक जवान व्यक्ति को मात देने वाली दिनचर्या के मालिक सुबह से ही रचनाकर्म में लग जाते हैं । गांधीवादी ऋषितुल्य 'ताऊजी' मात्र बातों से नहीं बल्कि कर्म से जीते हैं। उन्होंने अपने ज्ञानार्जन में जो पाया है उस दर्शन को अपनाया है उसे अपने आलेखों में लिखा है। उनकी कविताओं के प्रत्येक शब्दों में दिखता है। उनकी विचार धारा परमार्थ की है, जो उनके साहित्य में दिखाई पड़ती है। आज हमने साहित्य के विभिन्न बिन्दुओं पर चर्चा की और उनके विचार जाने। उनके विचार स्पष्ट और काफी हद तक सत्य का स्पर्श करते हैं। आइये हम सब उनके विचारों से कुछ सीखने समझने का प्रयास करें।

प्र.–व्यवहार में और रचित साहित्य कितने प्रतिशत का अन्तर जायज है ?

यदि साहित्यिक रचना में कल्पना, व्यवहार को दिशा बोध ा या प्रेरणा न दे सके तो रचना में कमी तो कही जावेगी। यदि व्यवहार रचना में सकारात्मक न हो तो रचना कच्ची कही जावेगी। रचना में कल्पना और व्यवहार का प्रतिशत निर्धारित करना कठिन काम है, फिर भी, 25 प्रतिशत कल्पना और 75 प्रतिशत व्यवहार एक मोटा अन्तर है, जो अवसर और आवश्यकता के अनुसार परिवर्तनीय बना रहेगा।

रचना यदि व्यवहार को कल्पना के सहारे सहलाती, संवारती, दिशा देती चलती है, तो प्रतिशत का अंतर वह 50–50 या 75–25 वाला भी हो सकता है।

प्र.–साहित्यकार होने के लिए व्यक्ति को कितना पढ़ा लिखा होना चाहिए ?

साहित्यकार को अक्षर ज्ञान, शब्द निर्माण, अध्ययन एवं अवलोकन प्रधान होना पर्याप्त है। आधुनिक दृष्टि से वह जितनी बड़ी डिग्री का स्वामी होगा उसका साहित्य में प्रवेश उतना ही प्रभावी हो सकता है। साहित्य का सृजन प्रकाशन प्रसार भी उतना ही मजेदार होगा। साहित्य का सृजन प्रकाशन प्रसार के बाद डिग्री एक मामूली सी हस्ती रह सकती है। असली डिग्री तो कल्पना, संवेदना, सांसारिक विविधता में एकता का बोध, मानवीय व्यवहार का अध्ययन और अभिव्यक्ति ही साहित्यकार की असली डिग्री है।

6–सामाजिक असंतुलन के लिए लेखक जिम्मेदार होता है या फिर सम्पादक ?

परिवर्तनशीलता प्रकृति का भौतिक धर्म है और साहित्यकार मानव व समाज की विविध संवेदनाओं, चुनौतियों और कल्पनाओं के आकर्षणों को अभिव्यक्त करने का नाम है । साहित्यकार में लेखन और सम्पादन दोनों ही जीवित दायित्व वाले अधि– –कार है । साहित्य यथार्थ के दूध में कल्पना की शक्कर केसर के समान है, जो न्याय के बिन्दु से समाधान तक सत्य की खोज है। अलग–अलग मानव समुदायों में अलग–अलग प्रकार से चुनौतियां होती हैं परन्तु उनकी संवेदनाओं और समाधान में शब्दों का, तर्कों का अन्तर होते भी भाव लगभग समान या कम से कम अन्तर्द्वन्द वाले होते हैं। .....जब जीवन में विभिन्न समुदायों के हित या लाभ या शुभ टकराते है, तो असंतुलन पैदा होता दिखता है। इसके लिए लेखक से लेकर सम्पादक तक में असंतुलन पैदा होता दिखता है। वहीं समाध ान का प्रयत्न और प्रतिभा बन कर साहित्य में आता है। इसके लिए लेखक से लेकर सम्पादक तक असंतुलन की रेखा के साथ समाधान का प्रभाव पैदा नहीं होता तो सम्पादक में अवसर पहचानने की कमी मानी जावेगी। लेखक तो मनमौजी भी होते है। स्वान्तः सुखाय तथा संघर्ष और समझौते वाले भी होते हैं। ये सब जीवन की जरूरतें हैं । अतः सम्पादक का

सम्मान

समाज सेवा के लिए भारत सरकार द्वारा पद्मश्री का अलंकरण महामहिम राष्ट्रपति श्री वेंकटरमन हाथों से/यूथ फोरम फार गांधीयन स्टडीज–प्रेस्टीजियस अवार्ड–ज्ञानयोगी– महामहिम श्री चेन्नारेड्डी द्वारा प्रदत्त/छ.ग. दलित साहित्य अकादमी धमतरी छ.ग. द्वारा भारत रत्न डॉ. अम्बेडकर गौरव अवार्ड/छ. ग. स्वतंत्रता सेनानी संगठन द्वारा त्यागबंधु पं. लखनलाल मिश्र स्मृति सम्मान महामहिम ई.एस.एल.नरसिम्हन द्वारा प्रदत्त/टाईम्स नाऊ– एमेजिंग इण्डियन अवार्ड–एजुकेशन के लिए/बस्तर में बालिकाओं के खेलकूद क्षेत्र में सराहनीय योगदान के लिए छ.ग. एथलेटिक, भिलाई द्वारा सम्मानित/स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया भोपाल सर्कल द्वारा बैंक डे अवार्ड/द वीक–मैन ऑफ द इयर अवार्ड, नेहरू सिद्धांत केन्द्र ट्रस्ट, लुधियाना द्वारा स्व. सतपाल मित्तल अवार्ड आदि।

यह दायित्व होता है कि समाज के यथार्थ और परिवर्तन की दिशा वाले सकारात्मक अथवा नकारात्मक लेखन को किस तरह, कितना, कब और कैसे प्रस्तुत किया जावे कि असंतुलन यदि जरूरी हो गया है, तो भी अनावश्यक तर्कों वाला न होकर सही सार्थक भाव वाला बना रहे।

प्र.–साहित्यकार अपने जीवन में क्या करता और वह क्या रचता है, क्या दोनो में तारतम्य होना जरूरी है ?

साहित्यकार के जीवन में करने तथा रचने में तारतम्य हो तो वह अध्यात्मिक वैज्ञानिक हो जाना होगा। दूसरी तरफ अन्तर जितना ज्यादा होगा, रचना में प्रतिभा तो होगी परन्तु करनी का अन्तर्विरोध उसके जीवन को घर में और बाहर भी हां और ना से गुदगुदाने वाला या रूलाने वाला बन जावेगा। इसके बावजूद प्रतिभा तो उसकी मृत्यु के बाद भी काम करती रहेगी। साहित्कारों की रचना और करनी में अन्तर आश्चर्य या अनहोनी नहीं रह जाती है। साहित्यकार तो जीवन के विविध रंगो को चित्रित करने के लिए विविधता में जीने का सरोकार रखने के अधिकारी है, जिससे हर रंग को कथनी या करनी की एकता या विविधता से प्रस्तुत कर सके । हां यदि रचना और करनी में तारतम्य हो तो सोने में सुहागे की तरह हो जाता है । वह आदर्श बन जाता है।

प्र.–मंचीय कवि और साहित्यिक कवि में क्या अंतर है ?

मंचीय कवि सामान्यतः शब्दों से, भावों से और तर्कों से गुदगुदाने वाले होते हैं। मानवीय संवेदनाओं की ऊपरी सतह से अन्दर को जाने वाले भी हो सकते हैं। परन्तु साहित्यिक कवि गंभीरता बरसाने वाले होते हैं। ऊपरी सतह से अन्तरतम् को जगाने वाले होते हैं। कुछ में दोनों बातें एक साथ सफलता के साथ होती हैं, वे श्रोताओं को बांधे ही नहीं रख सके वरन् दिशा भी दे सके तो भी मंचीय साहित्यकार हो जाता है। यूं साहित्यकार अपने आप में मंच होता है। उसमें वक्तव्य कला हो तो हर जगह वह स्वयं मंच होता है। बस श्रोता चाहिए भले एक ही हो।

प्र.–आधुनिक कहानी और आधुनिक कविता क्या बला है ?

आधुनिक कहानी समाज की यथा स्थिति और परिवर्तन के दौर को समझाने के लिए उलझाने की कहानी है। उलझा साहित्य निश्चय ही सुलझे समाज को चाल ना देगा। सुलझे साहित्य का भी निर्णायक होगा, जो आधुनिकतम् होगा। जिसमें अतीत का सच वर्तमान के यथार्थ को स्फूर्ति देता भविष्य को चेताने वाला होगा। साहित्यकार जब परिवर्तन की उलझनों को उभार कर सुलझने के परिवर्तन को जन्म देने को उकसाने की कोशिश करता है, तो वह आधुनिक कहानी बन जाती है। आधुनिक जीवन आर्थिक और कामनाओं की जटिलता तथा उपलब्धियों की गतिशीलताओं वाला है। इसमें उत्पन्न परिवर्तन की तेज गति उलझने सुलझने की दिशा में चलने वाली कविता में अभिव्यक्त होती है।

प्र.–क्या वास्तव में सफल महिला साहित्यकार होने के लिए परिवार नामक संस्था से दूर रहना आवश्यक है ?

महिला द्वारा साहित्य साधना के लिए भी समय चाहिए। उसे परिवार से वंचित रहने की जगह परिवार की नोन तेल लकड़ी से रक्षित होने की जरूरत तो रहेगी। महिला साहित्यकार को केवल पकाने और पैदा कर पालने का संयम तो चाहिए। साहित्य के लिए समय एक मात्र सबसे बड़ी सुविधा है। कौन सी रचना कब जन्म लेगी ? क्या पता ? विशेष कर कविता के बारे में। ....काम काज में ज्यादा उलझाव वह चाहे जिस प्रकार का और प्रभाव वाला हो, कविता–कहानी को जन्म देना, पालना पोषना कष्टकारक होता है। इससे कुछ रचनाएं तो जन्म ही नहीं ले पाती या जो जन्म लेती हैं, उनमें नैसर्गिक निरन्तरता में कमी आ जाती है।

महिला और परिवार से दूर हो! यह भारत में तो अभी असम्भव सा है। परिवार उसे समय का अवसर रचना के लिए उदारता से दे तो वह उसके लिए स्वर्ग सी सुविधा होगी।

प्र.–किसी भी पत्रिका में छापने के लिए रचनाएं भेजना कहां तक उचित है ?

लेखक रचना लिखता है, छपाना चाहता है, तो किसी न किसी पत्रिका में भेजने से ही उसे पता चलेगा कि कौन सी पत्रिका उसके स्तर की है। कौन सम्पादक उसे महत्व देगा ? कौन सी पत्रिका उसके लिए छापने का अवसर बनेगी ? यह किसी भी महत्वाकांक्षी लेखक के लिए जानना जरूरी है। इसलिए जो पत्रिका जानकारी में आवेगी वहां भेजना चाहेगा और अपना लेखन सुधारने का प्रयत्न करेगा। ...अच्छा तो यह है कि लेखक जांच पड़ताल करके ही रचना किसी पत्रिका को भेजे तो पत्रिका तथा स्वयं को सहयोग वाली बात होगी। यह भी सच है कि बिना छपे लेखक के विचारो का प्रचार प्रसार प्रभाव किस तरह होगा ? इसलिए छापने भेजना आवश्यकता बन जाती है।

प्र.–कहानी, व्यंग्य, कविता तीनों में कौन शक्तिशाली है ? किसकी मारक क्षमता ज्यादा है ?

व्यंग्य अपने में कहानी और कविता दोनों की क्षमता और योग्यता रखता है। ..कहानी और कविता भी व्यंग्य से रंग कर रंगीन हो जाती है। व्यंग्य तो रंगीन होता ही है। वह मिजाज को रंगीन बनाने से कविता से बड़ा और कहानी से छोटा पर

खोटा होता है। वह बोझ हल्का करते हार से जीत की संवेदना भी शीघ्र से शीघ्र देता है। मनोवैज्ञानिक परिवर्तन का एक कारगर औजार है, जिसे हथियार की तरह उपयोग किया जा सकता है। व्यंग्य में दर्द, टीस, भी होती है, और मुस्कराहट भी उसकी खूबी है।

साहित्य में सबसे शक्तिशाली हथियार तो कविता ही है , जिसे पालने की लौरी से लेकर लड़ाई के मैदान तक शौर्य पैदा करने के काम में लाया जा सकता है। जिसे सहज याद रखा जा सकता है, जिसकी मन पसन्द दो लाईने याद रखने का रिकार्ड कविता के पक्ष में है। मानवीय दिमाग कविता को सहज याद रख पाता है। स्वयं कविता सबसे सहज संवेदनशीलता से अभिव्यक्त करने की शक्ति रखती है। वह सर्वकालिक संवेदनशील साहित्य स्रोत है।

प्र.–जब समय के साथ लेखन में सुधार हो जाता है, तो फिर यह कैसे कहा जाता है कि उनकी शैली फलां थी ?

हर साहित्यकार की एक शैली तो होती ही है, जिसके द्वारा वह अपने को सरलता, सहजता और विशेष रूप से अभिव्यक्त कर पाता है। इसलिए समय के साथ लेखन में सुधार के बावजूद शैली को भी याद रखा जाता है। लेखन के सुधार में शैली का भी योगदान होता है, चाहे वह किसी में कम हो या किसी में ज्यादा हो। पाठकों, श्रोताओं और प्रशंसकों में भी शैली की पसंदगी और चर्चा होती ही है। शैली लेखन की ऊंचाई, गहराई और विस्तार में मदद करती है। कई बार शैली में थोड़ा सा परिवर्तन लेखन के परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान भी कर देता है। शैली भी लेखक के लेखन को पहचान देने वाली होती है। इसलिए चर्चा में बनी रहती है।

प्र.–मात्र कविता लिखना साहित्य है या फिर अन्य विधाओं से भी जुड़ना चाहिए ?

कविता लिखना साहित्य की महान विधा है। थोड़े शब्दों में ज्यादा अर्थ भरने का सशक्त माध्यम है। कविता अक्सर हृदय की संवेदना से फूट कर आती है। संवेदना से जन्म लेने के कारण वह संवेदना की उज्वलता और प्रभावशीलता को अभिव्यक्त करती है। ..किसी के यह कहने मात्र से कि कविता नहीं अपितु सभी विधाओं में लिखा जाना चाहिए। यह लेखक को प्रेरणा दे सकता है परन्तु उसे सभी विधाओं के लिए प्रभावशाली नहीं बना सकता। सहज लेखन शक्ति और प्रोजेक्टेड लेखन शक्ति में अन्तर रहेगा। रहता है। इसलिए स्वभाव या सहज प्रेरणा से लेखन ज्यादा सशक्त रहेगा। सभी विधाओं में लिखना यह हाथ की बात नहीं बल्कि अवसर, प्रतिभा और चाह का सरोकार है, अगर लेखक हर विधा से जुड़ सके तो कहना क्या ? वह हरफनमौला है। चक्रवर्ति साहित्यकार है।

प्र.–साहित्य की किस विधा को अपने लिए अनुकूल मानते है ? क्या उसी विधा ने आपकी पहचान बनायी है।

बचपन में कहानी सुनाने से साहित्यिक गतिविधि प्रारम्भ होने की याद है। बहादुरी और नया–नया करने की कहानियां बाल मित्रों को सुनाते रहता था। मीडिल में आते–आते कविता लिखने लगा। चित्रकारी और नाटक का शौक भी रहा परन्तु बी.कॉम पहुंचते पहुंचते सूख गया। अपने भावों के उन्मेश को कविता में लिखना कम समय वाला लगा। रचनात्मक कार्यों का जुनून भी इसमें बाधा नहीं बन पाया। संक्षेप में कविता, कहानी, लेख और चिन्तन समय अनुसार लिखने की प्रेरणा बने रहे। बस्तर में आने पर कविताएं ज्यादा लिखी। उन्हीं से थोड़ी सी पहचान बनी। यूं मुझें विश्वास है कि कहानियां, लेख, चिन्तन यदि प्रकाशित हो जाएं तो साहित्यिक पहचान बनाने में कामयाब होंगे।

प्र.–क्या साहित्य में भी टोटके होते है ?

जीवन का ऐसा कौन सा क्षेत्र है, जिसमें टोटके नही होते ? साहित्य भी इससे कैसे बच सकता है ? साहित्य की व्यंग्य और हास्य विधा अफवाह जैसी भी होती है। वह मूल्य निर्माता भी होती है। छोटे बड़े के भाव भी पैदा करती है। शायद हर लेखक की कहानी, लेख, नाटक या कविता लिखने में टोटके जैसी कुछ चीज होती है।

आखिर टोटका है क्या ! टोटका ध्यान बांटने, तनाव या चिन्ता के बिन्दु से अलगाव करने या बदलने अथवा कुंठा मुक्ति के लिए होता है। अधिकांशतः अपने मन में यह जानते भी हैं कि इससे कुछ ठोस परिणाम नहीं होगा। उसे अपनाना टोटका है। मन में एक सम्भावना का भाव पैदा करने वाला शब्द, वाक्य, भाव टोटका बन सकता है।

प्र.–क्या साहित्य में गॉडफादर का होना जरूरी है ?

गॉडफादर कहां जरूरी नहीं है ? हर व्यक्ति में कोई गुण या मूल्य या संस्कार अथवा विचार और कोई व्यक्ति विभूति गॉडफादर की तरह होता है, जो उसके जीवन के अधिकांश ज्ञान कर्म प्रेम को निर्देशित करता है, काम क्रोध लोभ को दिशा देता या रोकता अथवा बढ़ावा देता है। .....जहां तक साहित्य का प्रश्न है वह अन्तर्मुखी साहित्यकारों की कुछ जरूरतें पूरी करने वाला होने से जरूरी सा लगता है। साहित्यकार सामान्यतः संवेदना प्रधान स्वाभिमानी होते हैं । वे

शब्दों, मूल्यों, विचारों की सत्ता के प्रवर्तक नियामक, अधिकारी या सेवक होते है। उनका स्वाभिमान जल्दी क्या तुरन्त आहत या प्रभावित अथवा जागृत होता है। इसलिए वे किसी को गॉडफादर मान कर चलें यह कठिनता से समझ में आने वाली बात है। इसके बावजूद व्यक्ति को अकेलेपन से डर भी लगता है। इसलिए वह समूह चाहता है। समूह संरक्षक की शक्ति का भाव और मूल्य दोनों है। व्यक्ति एक से अधिक हुआ कि गॉडफादर की भूमिका बन जाती है। चाहे आप उसे जरूरी समझें या न समझें। वह उत्पन्न हो जाती है।

प्र.–साहित्य का वर्तमान मूल्यांकन क्या कहता है ?

परिवर्तनशील समाज में साहित्य का वर्तमान मूल्यांकन करना आसान नहीं होता है, जितना वह स्थिर समाज या एकशिक्षित, समृद्ध और संगठित शक्तिशाली समाज में हो सकता है। भारत के सभी समाज स्थानीयता से राष्ट्रीय और जागतिक समाज की दिशा में एक साथ बढ़ने वाले हो कर परिवर्तन के जिस मनमोहक दौर से गुजर रहे हैं, उसमें आज का मूल्यांकन कल बासी हो जाता दिखता है। आज राजनैतिक , आर्थिक तथा विज्ञान, टेक्नालॉजी की विश्व व्यापकता ने इसे और कठिन बना दिया है। हम किस कसौटी पर मूल्यांकन करें ? निराशा और आशा, सत्य और असत्य, अच्छा या बुरा, सुख या दुख, हित या अहित सबमें परिवर्तन हो रहे हैं। परिवर्तन जितने तेज होते हैं, मूल्यांकन भी परिवर्तनशील हो जाता है, जब तक कि परिवर्तन का सही दिशा बोध नहीं हो जाता है।

आध्यात्म और विज्ञान दोनों स्थिर समाजों में परिवर्तन करने वाले हो रहे हैं। उनके आधार पर मूल्यांकन करें तो आज सब कुछ समृद्धि और सत्ताशक्ति के लिए चाहिए। इनके लिए पैसा पहले भी जरूरत रहा आज भी है। पहले इतना मुखर और निडर नहीं था। आज वही प्रखर मुखर हो गया है। साहित्य को इसी पर कस कर देखें तो वह भारत की युवा पीढ़ी की पूर्ति करने या मांग को अपनी दिशा देने में समर्थ भी नहीं और केवल खोजी बना हुआ दिख रहा है। विशेष कर शिक्षित होते भारत में शिक्षा पर बहुत अधिक लिखा जाना चाहिए। समृद्ध और शक्तिशाली होती जनजातियों , दलितों, पिछड़ों की आवश्यकता का ध्यान रखते, इन विशाल समूहों को राष्ट्रीय और वैश्विक विकास की दिशा में बढ़ाने के लिए साहित्य का वर्तमान सृजन पर्याप्त होना एक महती जरूरत है।

साहित्यकार भी यदि दलित, पिछड़े या अगड़े होकर रह गए तो भारत का भाग्य संगठित और अद्वितीय कैसे होगा ? इस विभाजन को जात धर्म भाषा या क्षेत्र के रूप में अप्रभावी या क्षीण करना जरूरी है। साहित्य ने इसे नियंत्रित तो रखना चाहिए। ''जाति न पूछो साधु'' की तरह साहित्यकार का स्वर होना चाहिए।

प्र.–साहित्य की वर्तमान परिपाटी में तू मेरी थपथपा मै तेरी थपथपाता हूं, कहां तक सही है ?

थपथपाना अपने आप में न गलत है न सही है। वह हां और ना का वैसा ही अस्तित्व है, जैसे विद्युत का धन ऋण होना है। .....थपथपाने का धन ऋण यदि प्रेरणा को अभिव्यक्त करने वाली ऊर्जा बनता है, तो एक प्रोत्साहन भर देता है। . ...प्रंशसा के भाव से थपथपाना एक शक्ति है, सम्पदा है। ईर्ष्या के रूप में प्रतिस्पर्द्धा है। हित या लाभ के रूप में थपथपाना भी एक शिष्टाचार सा बन जाना कहा जा सकता है। परन्तु सत्य को थपथपाना साहस का काम है।

आप साहित्यकार की परम्परागतता को थपथपाते हैं या परिवर्तनशीलता को, यह महत्वपूर्ण है। साहित्यकार की आवश्यकता को थपथपाना उसकी प्रतिभा को यदि वह है, तो वरदान की तरह सिद्ध हो सकता है। वही किसी को गिराने के लिए थपथपाना गलत ही कहा जावेगा, फिर भी, तू मुझे थपथपा मै तुझे, तो यह मनोदशा साहित्यिक जाती वाद हो जाना है।

प्र.–क्या साहित्य में सफलता के लिए किसी विशेष गुट से जुड़ा होना जरूरी है ?

साहित्य में सफलता के लिए प्रतिभा को अभिव्यक्त करने की स्वभाविक शैली चाहिए। बाहर जो हो रहा है, हो गया है और होगा उसे पहचानने वाली संवेदना चाहिए। भावों के सागर मे शब्दों की वाक्य लहरें और ताजी हवा वाली तर्क परायणता की क्षमता चाहिए। .....साहित्य घट रही घटनाओं को अभिव्यक्त न कर सके, निहितार्थ प्रगट करने में असमर्थ हो, भविष्य के लायक अतीत को आज बनाने में निर्बल हो तो चाहे, जितनी गुटबाजी करो, गुट से जुड़ों सफलता गुट नहीं देता। यह अलग बात है कि समान उद्देश्य और दृष्टिकोण वाले, चिन्तन वाले एक हो जावें, तो सफलता का मार्ग चौड़ा हो जाता है। सुविधा वाला आसान हो जाता है उस पर बढ़ना, मार्ग के संघर्ष अथवा साहित्य के सन्देश के संघर्ष मिल कर ठीक से किये जा सकते हैं। पर इसके लिए गुट बनाने की नहीं वरन एक स्वाभाविक एकता ही सच्ची स्थिति है। अन्यथा सब अतीत के गर्भ में समा जाता है। गुट को गुट भार भी डालता है। स्वतंत्र साहित्य न मरता न मारता है। न जीतता हारता है। इसलिए साहित्य को गुट नहीं सत्य चाहिए । साध ाना चाहिए। समय की आवश्यक अभिव्यक्ति चाहिए। समाज, समय राष्ट्र और विश्व की आराधना चाहिए ।

पद्मश्री धर्मपाल सेनी जी एवं सनत जैन की बातचीत

बस्तर– स्वप्न, प्रयत्न और परिवर्तन

अपनी चमकदार और गहरी और भावभरी आंखों से गंगा जमुना की तरह आंसू बहाते आचार्य विनोबा भावे अपनी मातुश्री रूक्मिणी भावे की जन्म शताब्दी के निमित्त से बोल रहे थे.... ''हम तीन भाई। तीनों बाल ब्रह्मचारी। हम समाप्तम् तो सब समाप्तम्।'' तभी विचार आया कि एक संस्था बनाकर सेवाभाव से काम किया जावे। मित्रों से सलाह कर प्रस्ताव बाबा के सामने रखा। उन्होने स्पष्ट इंकार करते हुए कहा.. ''संस्थाएं बहुत खुल गई हैं। अध्यक्ष, मंत्री नगर में रहने लगते हैं। कार्यकर्ता गांव में पड़े रह जाते हैं।'' तभी संकल्प किया कि गांव में रहेंगे, जीयेंगे, वहीं मरेंगे। इस संकल्प में इतना दम रहा है कि नगर कल्पना में भी गांव पर सवारी नहीं कर पाया है। संस्थान का नाम माता रूक्मिणी भावे रखा। उन्होने स्वयं भावे शब्द काटते हुए कहा ''भावे नाम से यह संस्था सौ साल चल पावेगी। कृष्ण की रूक्मिणी के साथ जोड़ कर चलाओ, हजार साल चलेगी।'' पत्र में आगे लिख गया था.. ''बस्तर दण्डकारण्य क्षेत्र है। इसे प्रेमारण्य बनाने का प्रयत्न करेंगे।'' उत्तम प्रयत्न लिखते विनोबा ने सफलता की शुभकामना लिख दी। बस 1976 से बस्तर सेवा का प्रयत्न क्षेत्र बन गया। सफलता या असफलता, सुविधा या विघ्न बाधा, आशा या निराशा, मान या अपमान, ये सारे द्वन्द्व प्रयत्न के सागर में डूब गये हैं। यहां तन–मन–धन सब कुछ सेवा को समर्पित प्रयत्न भर रह गया है।

बस्तर के जिला मुख्यालय जगदलपुर से दस किलो मीटर दूर, राष्ट्रीय राजमार्ग 16 के किनारे बसे छोटे से गांव डिमरापाल की एक छोटी सी झोपड़ी में माता रूक्मिणी आदिवासी कन्या आश्रम 11 फरवरी 1976 से प्रारम्भ किया गया। तब बस्तर में महिला शिक्षा एक प्रतिशत से भी कम थी और चार छात्राएं एकत्रित करना चुनौती बन गया था। अथक प्रयत्नों पर निराशा की काली चादर मोटी होती जाती थी। हर प्रयत्न का एक ही उत्तर मिलता था कि ''लड़की कोई पढ़ाता है ?'' हमें देखकर माताएं अपने बच्चों का हाथ पकड़कर, घर छोड़कर जंगल की ओर भाग जाती थीं। बस्तर के इस प्रथम दर्शन ने हमें आश्चर्य से भर दिया था, जो धीरे–धीरे असफलता में बदलता दिख रहा था। रह–रहकर उपसंचालक श्री भट्ट की चुनौती याद आती थी कि ''मिस्टर सेनी, इफ यू विल कलेक्ट एट गर्ल्स, आई विल वी थैंक फुल टू यू।'' तब इस बात पर तिरस्कार भरी हंसी आई थी, जो अब यथार्थ में दिखाई देने लगी थी । परन्तु हम 'हारिये न हिम्मत बिसारिये न राम' के सहारे कर्म करते जा रहे थे । तभी श्रमदान का विचार मन में बिजली जैसा कौंधा। रापा–फावड़े ने जादू की तरह काम किया। गांव के सियान मन आश्रम आए और बोले –''अभी तक कोई गुरूजी ऐसा नहीं आया था।'' इस प्रशंसा के तुरन्त बाद उनका डर प्रश्न बनकर आया कि ''गांव में एक लड़का आठवीं में पढ़ता है। धान के खेत में कीचड़ लगने के डर से नहीं उतरता। अगर लड़की भेजेंगे तो उनसे काम कराओगे ? अगर पढ़–लिखकर उन्होंने धान रोपने और भात पकाने से मना कर दिया तो खेत और घर का क्या होगा ?'' यह उनका डर था जो आश्रम में बालिकाओं को पढ़ने नहीं आने दे रहा था । आश्रम में हाथ से काम और सिर से ज्ञान की शिक्षा को देखकर, आश्रम छात्राओं से भरने लगा। यह बस्तर की श्रम निष्ठा और विश्वास का स्नेहिल दर्शन था। इसे बस्तर की सादगी कहें या गरीबी, शोषण कहें या जीवन शैली, उस समय वनवासी स्त्री पुरूषों के शरीर पर बीत्ता भर या हाथ भर कपड़ा देखने को मिलता था। बस्तर के सुप्रसिद्ध दशहरा पर्व के अवसर पर लाखों स्त्री–पुरूषों को कम से कम कपड़ो में देखकर अफसोस भरा सौम्य आक्रोश रहता था ब्लाउज और कमीज शर्ट, तो शहरी शरीर की शोभा थे। आश्रम की रसोईया कलाबाई को जब पहली बार ब्लाउज पहराया, तो उसने कहा था। ''मुझे लाज लग रही है । गांव में कोई भी स्त्री इसे नहीं पहनती है।'' तब यही उत्तर दिया था कि...''यह लाज लगना नहीं, लाज ढंकना है।'' ग्रामीण जीवन का यह पहला ब्लाउज कुछ वर्षो में ही नई पीढ़ी का सामान्य लिबास बन गया। डिमरापाल में दवा की पहली गोली खिलाने की घटना भी रोमांचक है। गांव पटेल का पुत्र बुखार से तप रहा था उसे गोली खिलानी चाही, तो देवी–देवता कर रहे लोगों और महिलाओं ने मुझे घर से बाहर कर दिया । बाहर बैठा सोच रहा था कि दवा कैसे खिलाई जावे ? तभी लकड़ी के एक ठूंठ को उठाने एक युवक आया परन्तु असफल होकर दूसरे को बुला लाया। दोनों ने आसानी से उसे उठा लिया । इसे परमेश्वर का संकेत माना और मीरी पटेल से कहा ''देखो ! लकड़ी भारी थी, तो दो लोग मिल कर उठा पाये । बीमारी भी भारी है। इसलिए देवी–देवता भी करो और गोली भी दे दो।'' गोली दी गई। बुखार उतर गया, फिर तो दवा की बात धीरे–धीरे सिर पर चढ़ कर बोलने लगी। माताएं छोटे बच्चों को दवा देने के लिए आने लगीं। मां की ममता दवा की आवश्यकता बनती गई। अब दवा, इंजेक्शन या आपरेशन कोई नई बात नहीं रह गई है। वह जरूरत बनती जा रही है। यह ऐसा समय था जब कपड़ों और दवाओं को जन सामान्य तक पहुंचाने का काम आश्रम ने प्रचार मुक्त मौन से किया था। उस समय गीता के एक सन्देश ने बड़ा सम्बल दिया था। ''किसी की श्रद्धा मत तोड़ो, उसे उच्चतर बनाते

जाओ'' इसने हमें धैर्य के साथ जीवन की विभिन्नताओं को समन्वित करने का आधार प्रदान किया। गीता बचपन से पढ़ता था। उसका ''निष्काम कर्मयोग'', ''योगः कर्मशु कौशलम्'', ''श्रद्धावान लभते ज्ञानम्''। ''अभयं सत्व संशुद्वि'' और ''नष्टो मोहः .... गत सन्देह'' जीवन में रच पच गए थे, जिन्होंने कर्तव्य के हर महाभारत में ''यतो धर्मः ततो जय'' का सम्बल दिया। उस समय बस्तर के सरल भक्तिमय जन जीवन का दर्शन गीता से मेल खाता था कि उनकी सेवा के अलावा सोचना शून्य हो गया था। आश्रम के सिवा कोई विचार आता या टिकता ही नहीं था। श्रम से परिपूर्ण दिनचर्या तपों का तप बन गई थी। सफलता असफलता के तनावों से भरे माहौल में धैर्य से प्रयोग प्रयत्न और परिश्रम करते करते परिणामों का अदृश्य अम्बार लगता गया। संस्थान आगे बढ़ता गया। जन जीवन विचार समृद्ध होते गया। मानों रूक्मिणी का कृष्ण बस्तर के जीवन दर्शन को निखार रहा था।

बस्तर में काम करने के लिए कुछ सिद्धांत तय किये थे। उनमें से एक था बस्तर माटी की संस्कृति, भारतीय संस्कृति और आधुनिक संस्कृति का समन्वय करना कि बस्तर में एक नया जीवन लहलहा सके। दूसरा ध्येय था शासन और जनता के बीच एक रचनात्मक कड़ी के रूप में काम करना। जन जातीय क्षेत्रों में यह राष्ट्रीयता के संवर्द्धन की बुनियादी आवश्यकता रही है। इसके विचार प्रसार, समझना समझाना और आश्रम के छात्र–छात्राओं को परिवर्तन का दूत बनाना। बस यही आत्मधारणा रख कर शैक्षणिक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रयत्न किये। इससे परिवर्तन व परम्परा के मध्य वह सौम्य वातावरण बना, जिसमें आश्रम और परिवारों के बीच केवल बालक बालिका थे, जिन्होंने परिवर्तनों को आश्रम से परिवारों तक पहुंचाया। परिवारों से परिवारों में होते हुए गांव–गांव में चुपचाप फैलते गये। जैसे वे अपने आप हो रहे हैं। इससे कहीं लादने या थोपने का प्रश्न ही नहीं रहा। यह अहिंसा मूलक सेवा का कमाल रहा है। यह शान्तिमय मौन क्रान्ति थी। उस समय घरों में बर्तन नहीं के बराबर थे। पुरस्कार में बर्तन दिए। खेस, कम्बल और नये बीज दिए। रक्षाबंधन के त्यौहार ने आश्रम बालाओं में एक नई स्फूर्ति पैदा की। खेलों और विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा स्पर्धाओं ने जीवन के विविध क्षेत्रों के द्वार खोल दिये। इसमें शैक्षणिक प्रवासों ने जो जम्मू–कश्मीर से कन्या कुमारी और पंजाब से आसाम तक हुए। छात्राओं में नई रोशनी पैदा की। नया दर्शन, नये बोल, नया परिवेश देखते हुए उनमें विकास और परिवर्तन का मार्ग सुलभ कर दिया।

बस्तर आने से पूर्व विनोबा जी ने एक प्रश्न पूछा था– '' यह जानते हो कि भारत का अधिकांश खनिज कहां दबा पड़ा है ?'' उत्तर में कहा था ''कामर्स का विद्यार्थी हूं इसलिए पता है कि वह ट्रायबल क्षेत्र में है।'' उन्होंने प्रकाश सी जगमगाती प्रसन्नता से कहा था– ''केवल खनिज ही नहीं वहां हजार सालों की अनछुई प्रतिभा भी पड़ी है। तुम्हारा काम उसे निखारना होगा।'' बस्तर की धरती पर पांव रखने से पहले दिन से प्रतिभा तलाशने और निखारने का तप गंगा की तरह पावन रूप से बह रहा है। चल रहा है। जीवन का कोई भी क्षेत्र हो, सही व्यक्ति चुनों, प्रोत्साहन और प्रोत्साहन और प्रशिक्षण दो, प्रतिभा उभरने में देर नहीं लगती। वह निखरती और चमकने लगती है। अभी उसमें जैसा चाहिए वैसा स्वालंबी भाव तो नहीं आया है, जिस दिन वह आ जावेगा बस्तर में तप की सफलता का स्वर्णिम दिन होगा। प्रतिभा अपने बल पर अपनी अभिव्यक्ति करे। इसी यथार्थ को साकार करने की प्रार्थना चलती है, जो आज नहीं तो कल अवश्य सफल होगी। इसमें सबमें बड़ी परेशानी आर्थिक लगती है। समर्पित कार्यकर्ताओं की लगती है।

बस्तर आते समय रचनात्मक जगत के बुर्जुगों द्वारा एक समझाईश दी गई थी कि आश्रम का वातावरण ग्रामीण रखना और जन जातियों के मित्र साथी विचारक बनकर काम करना। बाबा ने गांव में रहने का आग्रह रखा था। जैसे बंदरिया अपने बच्चे को छाती से चिपकाए रखती है, वैसे ही इस विचार को आत्मसात कर कार्य किया, जिसका परिणाम है कि कहीं कोई भेदभाव, अलगाव, दूरी, परायापन रहा ही नहीं है। इस धारणा ने विश्वास पाने में बुनियादी काम किया कि स्वयं का व्यक्तित्व बूंद बनकर बस्तर के जनजातीय सागर में मिल कर सागर बन गया है। यहां आने के बाद के वे दिन मुझे याद आते हैं, जब हम एक दूसरे की भाषा बोली नहीं जानते थे। ठीक से समझ नहीं पाते थे पर मन में सोच कर थोड़े से शब्दों में व्यक्त कर सब कुछ समझ सकते थे। दो चार घटनाएं तो चमत्कारी है, जिनमें शब्द संवाद हुआ ही नहीं पर बात समझ में आ गई। यह उस समय का अद्भुत अविस्मरणीय करिश्मा जैसा है, जिसे भूलाया नहीं जा सकता। अब बस्तर की अभिव्यक्ति शक्ति शिक्षा, सड़क और व्यापार प्रसार से बढ़ गई है। परन्तु वह शब्दमुक्त समझ लुप्त प्रायः हो गई है।

बस्तर के आर्थिक जीवन में भी बड़े फेर बदल हो गए हैं। 1976 की तुलना में 1985 के बाद नई सोच, नये कार्य, नये क्षेत्र और नई प्रवृत्तियों ने तेजी से जन जीवन के मानस में प्रवेश किया। सन् 2000 के साथ समझ स्वीकार और अस्वीकार में आधुनिकता के दर्शन होने लगे है। इसमें बस्तर में हुए 90 के दशक के शैक्षणिक और आर्थिक आन्दोलनों का बुनियादी तथा रचनात्मक प्रभाव रहा है। युवा पीढ़ी ही नहीं प्रौढ़ और

सयान लोगों के मन–मस्तिष्क तक कुछ न कुछ नई रोशनी पहुंची है। अब नकारना और पलायन के बजाय देखने समझने और करने का प्रयत्न वाला वातावरण बनता जा रहा है। हजार सालों के परम्परागत सामाजिक जीवन में परिवर्तन की गति धीमी कहो या धैर्य भरी कहो ही रहेगी। कोई भी प्राचीन समाज एकाएक नहीं बदल सकता। वह अपने में नया समेटता और समन्वयी उत्पादकता वाला होता है। भारत की माटी में तो हजार सालो का ऐसा इतिहास रचा पचा है, फिर बस्तर अलग कैसे हो सकता है। संस्थान ने इसी ऐतिहासिक समझ से आश्रमीय कार्यों का जीवन खड़ा किया है। जिससे विकास तथा परिवर्तन में परम्परा की प्रतिभा जोड़ने की कला विकसित होती दिख रही है। एक समय था, जब आश्रम में 2 पैसे की पेन्सिल खरीदने को कहने पर पालक अपनी बेटी का हाथ पकड़ कर आश्रम स्कूल से घर ले जाने को तैयार दिखता था। अब वह हजार रूपया खर्च करके भी पढ़ाना चाहता है। उस समय की शादी में एक टोकरे में आदान–प्रदान का सारा सामान समा जाता था, अब कम से कम दो एक गाड़ी सामान घर गृहस्थी जमाने के लिए रिश्तों से मिल जाता है। विगत 15–20 वर्षों में कला कौशल, उद्योग धन्धों और सांस्कृतिक आयोजनों में भाग लेने के लिए बस्तरिया देश विदेश घूमने लगे हैं। वनोपज और खेतीबाड़ी की सामान्य उन्नति तथा बढ़ते भावों ने आम जीवन में खुशहाली की किरण पहुंचाई है। अन्धेरा अभी भी बहुत है परन्तु उसे मिटाने के लिए रोशनी करने की ललक व्याप्त हो गई है। आजादी के बाद जंगल कटने का सिलसिला चला, जो आज भी बन्द नहीं हुआ है। खेती की आकांक्षा आसमान छू रही है, फिर भी, वनों में जनभागीदारी, वनोपज के बढ़ते भावों, वृक्षो से प्यार तथा उनके अभाव में रहने की विवशता अब पेड़ो की रक्षा की भावना जगा रही है।

पंचायती राज की, विशेषकर जन जातीय क्षेत्रों में चाहे जितनी आलोचना की जावे, निंदा के नगाड़े पीटे जावें, बेरहम होकर पोस्टमार्टम किया जावे, उसने बस्तर में नेतृत्व के अकाल को मिटाने में सबसे कारगर कार्य अंजाम दिया है। बस्तर का गरीब परन्तु स्वाभिमानी, सुविधाहीन पर स्वतंत्रता प्रिय, भोला–भाला, सरल–तरल आदमी अपने परिवेश में जिस कार्य को अपने लिए चाहता था उसे पूरा करने का अवसर पंचायती राज ने दिया है। यही नहीं उसके आवश्यकता बोध को पूरा करने का मार्ग भी पंचायती राज से मिलता जा रहा है। पंचायती राज गांव–गांव तक भ्रष्टाचार फैलने की बात भी बड़े जोर–शोर की जाती है। परन्तु शहरों और नगरों के विकास में उसका आंकलन तो कीजिए ? आंखें खुली रह जावेंगी। पहले भ्रष्टाचार द्वारा गांव से धन बाहर नगरों में जाता रहा है। अब एक अन्तर आ गया कि बाहर से कुछ धन गांव में भी आने लगा है। इसे केवल भ्रष्टाचार का मानना गांव के प्रति अपराध का प्रतीक है। इस बदलाव में पगडन्डी की जगह सड़क, पैदल की जगह वाहनों, बिजली के खम्बों, आंगनबाड़ी, पाठशाला भवनों तथा छोटी–छोटी बढ़ती दुकानों से आता देखा जा सकता है। घास–फूस की झोपड़ियां खपरों से टिन तथा पक्के मकानों में बदल रहे है। यह सब होते भी अभी पंचायती राज को ग्राम स्वराज्य के रूप में आने के लिए समय और समझ की आवश्यकता है। आज नहीं तो कल ग्राम सभा का चेतना भरा स्वयं स्फूर्त आन्दोलन उसे ग्राम स्वराज्य में परिवर्तित कर ही देगा। जिस दिन गांव अपनी योजना अपनी ग्राम सभा में बनाने लगेंगे उस दिन को ग्राम स्वराज्य का द्वार कहा जावेगा।

बस्तर क्षेत्र की वर्तमान स्थिति में नक्सलवादी आन्दोलन को कौन अनदेखा कर सकता है। उनके विचार में यह समता मूलक है। शोषण विरोधी है। गरीबों को राजनीतिक शक्ति बनाने वाला है। दूसरी तरफ इसने वनों में बिखरे जीवन को संगठित करने का प्रयत्न भी किया है। यह आन्दोलन लोगों को जागृत करता हुआ भी लगता रहा है। इससे कुछ सकारात्मक डर भी पैदा हुआ है। इसने सड़कों के विकास को जरूर अवरूद्ध किया परन्तु पगडन्डियां जीवित हैं। गांवों का बचपन, किशोर और युवक एक तरफ लोकतंत्र के विकास मंत्र से परिचित हो रहा है, तो दूसरी तरफ माओवाद के विचारों और हथियारों से सम्पर्क में आ रहा है। अब कैम्प लगाएं सशस्त्र बल भी उनके जीवन में हलचल पैदा कर रहे हैं। इसलिए गांवों के शान्त जीवन में बड़ी मनोवैज्ञानिक हलचलें होना रोज की बात बनती जा रही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह वनों के बीच गांवों और ग्रामीणों में यथा स्थिति को समेट कर नई जागृति लाने वाला होगा। सड़क किनारे से लेकर आन्तरिक से आन्तरिक अंचलों में सड़क शिक्षा विकास सुविधाएं और बुलेट की आवाजों का शोर कहीं धीमा कहीं धमाकेदार मचा हुआ है। इसमें जो दिलों को जीत जावेगा वही मार्ग दर्शक बनेगा। स्वराज्य के दसियों सालों में नई आशाएं जागी है, तो निराशाएं भी पनपी हैं। विचारधाराओं के साथ सुविधाओ ने भी जीवन शैलियों में सक्रियता पैदा की है। परिवर्तन की गति कहीं आश्चर्य पैदा कर रही, कही स्फूर्ति तो कहीं क्रोध–नाराजगी भी जन्म ले रही है। कहीं परम्परागत सुविधाएं समाप्त हो रहीं तो नई सुविधाएं उसे गति से नहीं मिल पा रही हैं। इससे अस्थाई नाराजगी का अम्बार लगता जा रहा है। कई नई सुविधाओं ने खुशी की लहर भी पैदा की तो विकास की इच्छापूर्ति की कमी भी खटकती दिखती है। इस खुशी और नाराजगी के बीच यथास्थिति का आवरण

भारत के लोकतंत्र को चुनौती भी है कि वह पिछड़ों अशिक्षितों, दरिद्रों को राजनीतिक शक्ति बनने के मार्ग को सरल और सुस्पष्ट करें। उन्हे आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक खुशहाली और स्वाभिमान में योगदान करने का अवसर दें। इस अवसर का द्वार खोलने के लिए नक्सलवादी बंदूक के रास्ते से चल रहे हैं। इस मार्ग को बुद्ध और गांधी की भूमि क्यों स्वीकार करें ? सत्ता परिवर्तन में अहिंसक स्वभाव वाला लोकतंत्र भी बुलेट की सीधी हिंसा को नकारता और ललकारता दिख रहा है। ऐसी स्थिति में यहां के जन गण मन की खुशहाली के लिए वह बलिदान में भी आगे बढ़ गया तो निसन्देह बलिदान और विकास का सत्य विजय का पथ प्रशस्त करेगा। बुलेट की आवाजों से गूंजती भारत की ऐसी आक्रान्ति धरती पर कौन इस सत्य को साकार करेगा ? जो भी करेगा वही सफल होगा। लोकतंत्र इस पथ का सेवक बन कर चलने वाला तंत्र बनता जावेगा तो परिणाम सकारात्मक होने की सम्भावना बढ़ती जावेगी। देश की जनजातीय क्षेत्रों में आमने सामने में धाराएं निसन्देह जागृति की लहरें उठाने में सक्षम होती रहेगीं तब भी शिक्षा और विकास इसमें निर्णायक रोल अदा करेगा।

बस्तर का आर्थिक सामाजिक जीवन आज भी गहन सघन वनों के अन्दर वनोपज पर मुख्यतः आधारित है। गांव अभी भी पारों में बिखरे हैं। खेती छोटे–छोटे टुकड़ों में विभक्त है। वह रोजगार का बड़ा साधन शायद ही बन पावे अगर बनेगी तो वनों का विनाश करके ही यह हो सकता है। पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण कृषि योग्य भूमि का अभाव हमेशा ही बना रहेगा। अगर वनों का व्यापक विनाश हुआ तो झाबुआ की तरह बस्तर भी मजदूरों के पलायन की भूमि बन जाने को अभिशप्त होगा। वहीं भारत का एक और पर्यावरण बैंक उजड़ जावेगा। अतः यहां खनिजों का उत्खनन, वनोपज दोहन और धन्धों का जाल बिछाने के लिए आवागमन के साधनों का दिन दूना रात चौगुना विकास करना कारगर तरीका होगा। ये कार्य भी शिक्षा के अभाव में असरदार नहीं हो सकेंगे। इसलिए शिक्षा के विस्तार के लिए हिमालयी प्रयत्न जरूरी है। इसमें भी आश्रमीय शिक्षा सफलता के नये अवसर और परिणाम देने में सबसे अधिक सक्षम दिखाई देती है। बशर्ते इसे प्रतिबद्ध होकर किया जावे तथा किसी भी प्रकार की लूटपाट पर कड़ाई से अंकुश रखा जावे। इस हेतु से आश्रमों को सड़क किनारे बना कर उसके अधीक्षक और शिक्षक जाति भेद के बिना रखे जावें। बस्तर का नया दर्शन एक और बात पर निर्भर करेगा कि क्या अगले 25 सालों में हर 20–25 कि.मी. पर कस्बों का विकास किया जा सकता है ? संगठित गांव, छोटे नगर बस्तर जैसे क्षेत्र को नया रूप दे सकते हैं। यह बस्तर विकास का आधुनिकीकरण वाला दर्शन है, जिसे शिक्षा सड़क और उद्योग मूलक बना कर पूरा किया जाना होगा। माता रूक्मिणी सेवा संस्थान ने प्रारम्भिक दिनों में ही सड़क किनारे से दूर भागने की जनजातीय प्रवृत्ति को बदलने में विचार प्रसार का काम लगन से किया है। अब सड़क से दूर भागने की नहीं, सड़क के निकट आने की प्रवृत्ति आती जा रही है। यह बस्तर दर्शन का सकारात्मक पहलू है, जो उसकी आधुनिकता का प्रतीक है। यही प्रवृत्ति है, जो नये गांव–कस्बे तथा छोटे नगर बनाने में मददगार होगी। यह बस्तर विकास की 'मास्टर की' भी है।

आजादी से पहले और आज भी बस्तर हरिभरी पहाड़ियों से सजा धजा सुरभ्य क्षेत्र बना हुआ है। यह शुद्ध वायु आक्सीजन उत्पादन के प्राकृतिक कारखाने जैसी धरती है। यह सुनहरी, स्वच्छ, विटामिन डी भरी उर्जा से परिपूर्ण धूप से समृद्ध है। महानदी इसका सिर धोती है। इन्द्रावती और शबरी शरीर तो गोदावरी चरण पखारती है। यह राम वन गमन की पावन भूमि भी कही जाती है। किवदन्ती यह भी है कि दन्तेवाड़ा में सती का दांत गिरा था इसलिए माता दन्तेश्वरी शक्ति पीठ है। चित्रकूट के जल प्रपात की गम्भीर धड़धड़ाती आवाज रोम रोम में सिहरन पैदा करते हुए सतरंगी इन्द्रधनुष आंखों के सामने और दिल के अन्दर रंग बिखेर जाती है। तीरथगढ़ का अपना सौन्दर्य निराला है। कल कल छल छल करती सहस्त्रों धाराएं आंखों से दिल दिमाग में बहने लगती हैं, तब सोच में न कल रहता है और न छल रहता है। केवल वर्तमान का सौन्दर्य रह जाता है। प्रशंसा के भाव सहज जन्म लेते मचलते हैं। बस्तर के प्रपातों का यह आकर्षण पर्यटन को कल्पना को सावन के मेघों की तरह उमड़ता घुमड़ता रहता है। बस्तर के झरने, सरगी के लुभावने वन और कोटमसर जैसी आश्चर्य चकित करने वाली गुफाएं पर्यटन उद्योग के लिए तैयार बैठी हैं। इनका प्रचार प्रसार और प्रबन्धन बस्तर की कीर्ति में चार चांद लगा देगा। अब दण्डकारण्य की यह प्राचीन धरती राष्ट्रीय राजमार्गों से उत्तर –दक्षिण और पूर्व पश्चिम में संवरती अपनी भाग्य रेखा का निर्माण कर रही हैं। वहीं बैलाडीला से विशाखापट्टनम् और निर्माणाधीन जगदलपुर रावघाट दल्ली राजहरा रेल लाईन इसकी गतिरेखा बन कर इसे विकास की स्फूर्ति से भरने वाली होगी।

बस्तर के गांव विविध वृक्षों के सागर में बसे हैं, जो ढ़ोल नगाड़ों, गीतों और घुघंरूओं से गूंजते रहते हैं। मस्ती से नृत्य करना यहां के सारे दुखों की दवा है। इसके बजाय यह कहना उपयुक्त होगा कि नृत्य यहां सुखों का संसार रचते हैं। यहां की जन जातियों का स्वतंत्र स्वाभिमान, स्वाधीनता के बड़े–बड़े सेनापतियों से प्रतिस्पर्द्धा करता लगता है। पसीने से स्नान करते पुरूषार्थीजन, धान्य धन उगाते, वनोपज एकत्रित करने में मगन, सड़कें बनाते हैं। भवन खड़े करते हैं। पर्व

उत्सव मनाने में समर्पित भाव से डूबे वे सारे कष्टों संकटो को सरलता से पार करते दिखते हैं। यह उनकी मुस्कराहट और हास्य उल्लास से अभिव्यक्त होते देखना रोमांचित कर देता है। सचमुच ये पृथ्वी पुत्र हैं। अमृत संतान हैं। वे चाहे भूखे रह जावें पर भीख मांगते नहीं दिखेंगे। अब भूखा रहने का तो कोई कारण नहीं रहा है। चाउर बाबा का सस्ता चावल नमक उनको प्राप्त है। वे वनों में दिन रात खतरों से खेलते, जीते अब शिक्षा सड़क और बाजार के सम्पर्क में आकर हुनर सीख रहे हैं। व्यापार धन्धों में लग रहे हैं। अथक परिश्रम कर छोटे–छोटे खेत बना रहे हैं। अपनी परम्पराओं को आधुनिकता में संवारते, सहेजते, साधते हुए राष्ट्रीय विकास में धीरे–धीरे योगदान कर रहे हैं। पगडंडियां अभी भी सम्पर्क मार्ग बनी हुई हैं। यहां–वहां घास फूस की झोपड़ियां आदिम युग की पहचान भी बनी हुई है। यह भी सच है कि बाल किशोर युवा दिलों में नया जमाना अंगड़ाई ले रहा है। टी0वी0, रेडियो, मोबाईल नए शौक बन रहे हैं। साईकिलों से मोटर साईकिल और चार पहिया गाड़ी भी महत्वाकांक्षा की सीमा में सम्मिलित हो रही है। शादी विवाह के अवसर आधुनिकता की दिवाली मनाने लगे हैं। कभी –कभी, कहीं–कहीं लगता है कि बस्तर आधुनिकता की मस्ती में झूम रहा है। यह खुशी कस्बों, गांवों में भी झलकती मिल जाती है। निसन्देह यह आम जीवन नहीं है पर यह तो बताता है कि जन जीवन किस दिशा में बढ़ रहा है। जब सारी दुनिया में आधुनिकता की हवा बह रही है, तो बस्तर भी कैसे अछूता रह सकता है? उसकी विशेषता तो यह है कि नए रंग नए ढ़ंग में रमते भी वह अपनी विशेषताओं को, परम्पराओं को सहजते बढ़ रहा है।

बस्तर क्षेत्र में बैलाडीला का फौलादी पर्वत गर्व से सीना ताने दक्षिण बस्तर दन्तेवाड़ा में खड़ा है। जो आज नहीं तो कल भारत की औद्योगिक शक्ति बनेगा। निःसन्देह यह विकास के द्वार खोलेगा। ऐसा करते हुए विस्थापन का दर्द नहीं जैसा हो तो स्थानीय जन गण मन के लिए स्वतंत्रता का उत्सव भी होगा। दक्षिण बस्तर के विकास में एन0एम0डी0सी0 सड़कों, भवनों और जावंगा जैसी एज्यूकेशन सिटी के साथ कृषि, बागवानी तथा दूध उत्पादन व अन्य रोजगार मूलक कार्यों से इस भू–भाग के जन जीवन को सुधारने में प्रशासन भी साहस से कार्य कर रहा है। अलग–थलग से बसे बीजापुर और सुकमा भी अब नई उड़ानें भरने की स्फूर्ति से कुछ न कुछ चुनौती भरा करने के लिए तैयार हो गए है। चुनौती नव स्फूर्ति देने लगे तो राह रोकने वाले प्रश्न समाधान बनने लगते है। यह एक सहज सरल स्वभाविक स्थिति या बात है कि ऐसा करते हुए हर प्रश्न और हौसला मांगता है, जिसमें धीरता हो, वीरता हो जो एक बड़े उद्देश्य से अनुप्राणित हो ।

बस्तर में ज्ञान से भरे सुनहरे दिन निकट आते जा रहे हैं, जब आश्रमों और शालाओं के बालक बालिकाएं आधुनिकता को स्वीकारते, तनावों को सहते नकारते, विकास को समझते सहेजते, कुछ आदतों में सुधार लाते हुए अपने कदम आगे बढ़ाते जावेंगे। बस्तर के स्कूलों में विज्ञान की तरफ बढ़ता रूझान शिक्षा में आयी सर्वाधिक सकारात्मक पहचान कही जा सकती है। अब प्रयास जैसी 'छू लो आसमान' और उड़ान जैसे शैक्षणिक संस्थान बालक बालिकाओं को नई पहचान देने लगे है। अशासकीय संस्थाओं ने भी बस्तर की प्रतिभा को रूझान, उड़ान और शानदार पहचान दी है। बस्तर अब खेलकूद के क्षेत्र में अपना दमखम सिद्ध कर रहा है। शालेय खेलकूद के अलावा अन्य प्रतियोगिताओं में भी बस्तर की युवा पीढ़ी राज्य स्तर पर अपनी पहचान बना कर विजय पताका फहरा रही है।

आर्थिक गतिविधियों में स्वसहायता समूहों में महिलाएं अपने स्वालम्बन के परम्परागत कार्यों के अलावा नए क्षेत्र खोज रही हैं। नारी शक्ति जागेगी। सारी विपदा भागेगी को चरितार्थ करती स्त्रियां आत्म निर्भरता की फौज बन रही है। बस्तर को अब अपनी बंजर पड़ती धरती को सुधारने संवारने की योजना चाहिए। जल संग्रह कार्यक्रम यहां का कायाकल्प कर सकता है। मनरेगा योजना इसके पिछड़ेपन को दूर करने में सहायक होती लगती है। अगर ये कार्यक्रम फाईलों से जमीन तक निरन्तर पहुचते रहें तो बस्तर की धरती अपने नौनिहालों को खुशहाली से भरने में समर्थ है। अब बस्तर माटी का कण–कण अपने मन की कह रहा है, छत्तीसगढ़ से कहा रहा है, भारत से कह रहा है, हमें अवसर दो हम विकास से राष्ट्र की गोदी भर देंगे। बस्तर अब अपनी परम्परागत स्वतत्रंता और भारतीय स्वाधीनता का प्रयागराज बन रहा है ।

माई दन्तेश्वरी की असीम कृपा से उसकी भुजायें विकास के लिए फड़क रही हैं। उसके आशीर्वाद से उसका हृदय आधुनिकता का स्पन्दन करने लगा है। उसके मस्तिष्क में कुछ कर गुजरने के सपने मचल रहे हैं। संकल्प में बदलते ये सपने विकास में साकार होकर ही दम लेंगे।

कविताएं : पद्मश्री धर्मपाल सेनी

पृच्छा

–1–

काम पृच्छा
आयु में अमर है,
अस्तित्व हित
अजर है
सुख की डगर
ब्रह्मानंद सहोदर है।
कभी देह, कभी वस्तु,
कहीं मौन आकर्षण,
कहीं मुखर कल्पना,
जीवन में छिपी,
जीवन की पहचान,
प्रवृत्ति हो प्रबल,
निवृत्ति हो निबल,
इच्छाओं के जंगल में
संयम शान्ति अनुभूति
अमर पथ संज्ञान।

–2–

काम पृच्छा
जीवन उद्देश्य के
समर में संधान,
बन आह्वान,
अबाधित हो
रूपान्तरण प्रज्ञान,
आत्मबोध में
अवतरित
कर्म कौशल
रसवान,
प्रेमतृष्णा का
अवसान,
आयु के नमक का
मरण में पर्यवसान।

–3–

मैंने इन शब्दों को
जगाया नहीं,
ये उतरे हैं
मुझे जगाने
जगत को बताने,
आए रिझाने।
लगते जाने अनजाने,
चित्त बखाने,
चिन्तन सुलझाने,
बोध प्रकाश दिखाने,

तुम ईश्वर की प्रतिभा हो

ऐ मेरे अरमानों,
सपनों में मचलो,
आशा के आसमान में
साहस की भरो उड़ान
लक्ष्य की रखो कमान,
उपभोग की तड़ातड़ी में,
धरती पर रहो
संसाधन अनंत नहीं हैं
भले ब्रह्माण्ड अनंत हो।
किसी प्रपात को निहारो,
वन के पग पखारो,
सड़क की स्वतंत्रता संवारो,
किसी स्कूल के आंगन में,
गुलाब उगाकर,
गेंदा खिलाकर,
मोगरे की खुशबू बन
हवा में झूलो तो सही।
पढ़ने वालों के दिलों में
विस्तार का उल्लास,
कुछ नया करने का साहस,
जीवित पृथ्वी के,
असीम अंतरिक्ष के
रहस्यों के घूंघट हटाओ।
कर्म में कौशल रचते
प्रेम पथ पे चलते रहो,
तुम स्वतंत्रता के प्रश्नों में
समाज की ऊर्जा हो,
सांस हो संस्कृति की,
प्रकृति का पर्व हो,
तुम ईश्वर की प्रतिभा हो
मनुष्य के अवतार में।।

मेरे उलटे सुलटे बोल

मैंने सपनों में सपना खो दिया,
मेरे हंसने में हंसना खो गया,
मैं रोने में रोना जोड़ रहा,
मैं भाग्य में भाग्य खोद रहा,
मेरा मैं, मैं में खो, डूब रहा।

मुझे चलना सिखाया, मैं दौड़ रहा,
मुझे जोड़ना बताया, मैं घटा रहा,
मैं घटने में जुड़ना सीख गया,
मैं झूठ में झूठाई रीत गया,
मेरा 'मैं' विद्रोही बन, जूझ रहा।

मेरा त्याग, त्याग में लगा तैरने,
मेरा ज्ञान, कर्म में लगा पैठने,
मेरा प्रेम, भक्ति में मगन डूबने,
मेरे कर्म चले, ऐसे तन मन में।

को अहम् ?

अपने आपको जानो,
पाओगे केवल तन नहीं,
केवल आत्मा भी नहीं,
बुद्धि की बात क्या
श्रम शक्ति भी केवल नहीं।

तन अनुपम अवतार ब्रह्माण्ड का,
चेतना अनंत ब्रह्म की
तप रही तन में,
ज्ञान कर्मप्रेम का
प्रवाह महिमावान है।

अकेला तन नहीं है, प्राणी
मानव में ओत–प्रोत ऊर्जा हुई,
चेतना का आनंद कोष
देह में सुख हुआ,
मन में रममाण है।

हर देह ब्रह्माण्ड गागर है,
आत्म चेतना सागर है,
हम देह ही नहीं, यह कहते
योगा करता, तन के द्वारा
आत्म समत्व उजागर है।

गांधी दर्शन

अहिंसा,
सत्य के प्रति
प्रेम का
चरमोत्कर्ष है।
उसके वैभव का,
प्राणपन से,
प्रयोग प्रसार का
जीवन जिया
दर्शन है,
दोनों जहां एक है,
वहीं अमरत्व है।
भिन्नता में एकता का
अद्वितीय अपनत्व है
एक का विविधता में,
अद्वैत अभिव्यक्त है।
जगत की स्फूर्ति में
एकत्व की निष्पन्नता,
बोध की शान्ति,
कर्म की अनासक्ति
निसृत है,
तृप्त है,
नहीं कहीं भ्रान्ति।

अनुभवों का प्रश्न ?

जीवन के बदलते
परिवेश में,
परिवर्तन भरी राहों में,
नित्य नूतन होते लक्ष्यों में,
चुनौतियों के अन्दाजों में,
बीते अनुभवों का क्या करें ?
इतिहास सुनें या
रचे इतिहास ?
समय उड़ा रहा उपहास,
रचते इतिहास से उगते
अनुभव
किसका वरण करें ?
परिवर्तन का सृजन करें ?
शाश्वत मूल्यों की ऊर्जा
अनुभवों का आत्मिक बल है,
उसको साधे,
सब सध जावेगा,
परिवर्तन का छल
मिट जावेगा,
नया इतिहास रच पावेगा,
अनुभवों से सज जावेगा,
नव परिवर्तन काल।

श्रद्धा

मेरी श्रद्धा की सच्चाई
तर्क और प्रयोग
पंखों से उड़ान
भरती है,
आसमान छूने में
संदेह हरती
साहस भरती है।
वह मनमाने लाभ के
विश्वास की झंकार नहीं
परिणामों पर सवार
सार्थक विचारों से
उद्देश्य पगी,
हुंकार रही।
कभी औजार,
कभी हथियार
दोनों भी साथ रही।
मेरी श्रद्धा,
कभी नाव,
कभी मल्लाह,
कभी पतवार रही,
तीनों अलग–थलग नहीं,
उद्देश्य सगी,
स्वतंत्र रही।

मेहमान

मैं कांगेर घाटी के
गहन सघन बन में
धंसता जा रहा हूं,
मेरी आंखों ने
देखना छोड़ दिया है,
कान केवल झिंगुर की
आवाज सुन रहे हैं,
धीरे–धीरे शांति में
वह भी खो गई।
अपने आप में,
भय में, अभय खोजता
सिमट कर
अकेला रह गया हूं।
शांति के बियावान में
अकेले खड़ा
जंगल हो गया हूं।
चौरासी लाख योनियों के
कोलाहल में घिर कर
अपने में रम गया,
सोच में बहते–बहते
अपने अंदर की
शांति में थम गया हूं।
यह शांति मेरी पहचान है,
आनंद, इसका धर्म,
वस्तुओं के सुखी
संसार में आते ही
यह कुछ क्षणों की मेहमान है,
फिर भी
मेरा अमृत ज्ञान है।

हाईकु

भोग हो रोग
संयम सही दवा
त्याग से भोग।

जीवन जागा
आयु बाहर भोगा
अन्दर योगा।

जीवन ज्ञान
अन्दर युद्ध बना
बाहर गान।

चीजों की मौज
भोग भूख बढ़ाती
रोगों को लाती।

आजादी लाई
पन्द्रह अगस्त को
समता आंधी।

फूल की कला

मुझे गुलाब ने
फूल नहीं कांटे दिये,
उसकी वेदना ने ही,
मुझे रूलाया,
सोते से जगाया,
अब फूल को
कैसे सराहूं,
यही सोचता हूं,
कांटों का दर्द
मोचता हूं,
मोचते, कोसते
मुक्त हो रहा,
फूल भी
आकर्षण धो रहा।
गुलाब का पूरा अस्तित्व
नग्न खड़ा है,
जिद पर अड़ा है,
जीवन में
दुख की पीड़ा
सुख का फाग
वैसा ही लगा है।
गुलाब मुझमें
रोने लगा,
मेरी थपकी से
सोने लगा,
उसकी चैन बन गई,
कांटे फूल में
विसर्जित हो गए,
प्रभात ने उठाया
गुलाब का ताजा फूल
सम्मुख आया,
कांटों में खिला हूं,
ऊपर उठ कर
जियो मित्र
कष्टों को तप कर
खुशी में खिलो
जीवन कांटों की नहीं
फूल की कला है,
यह कांटों की
सच्ची सलाह है।

वीर भोगता है भक्ति

जीवन,
चुनौतियों के महासमर में
प्रयत्नों की लहरों पर
जिजीविषा सवार हो,
आशा जोड़ता, संवारता,
निराशा फेंकता, रौंदता,
छोटा बड़ा ध्येय लिए
हर काल सजग सतर्क
नींद भी, मौत भी जागता,
धूप, शीत, वर्षा सहन
उपलब्धियों में रह मगन,
जीवन सुख भोगता,
दुखों से बचने
अपने को खोजना,
जीवन में
बोध देती हर चुनौती,
बोझ नहीं कोई मनौती,
इच्छा में भरती ज्योति,
साहस का नेत्र तीसरा
जगा देता कर्म हस्ती,
यत्नों को प्रखर कर
प्रशस्त कर मार्ग मस्ती,
हार को हजम करते जीवन
वीर भोगता है भक्ति।

पैसा

पैसा अपनी हदें पार कर रहा,
इंसान के हाथ का मैल
भगवान बन रहा।
उसके मुंह पर
भूख और दरिद्रता की
कालिख लगी है,
उसे मिटाने के बजाय
वह आईने पर
आरोप जड़ रहा।
ईमान पहले भी पैसों से
घिरा रहा है,
पर अब पैसों का राज
ईमान के राज से
अलग हो गया है।
मजा यह कि ईमान
खुद खोज रहा ईमान
पैसा हर कहीं उसे घेर रहा,
सुन्दर, कुरूप, अच्छा बुरा
सत्य असत्य का प्रकाशन
पैसा पैसे को लूट रहा।
ईमान को गरीबों में छोड़
खुद अमीर हो गया
कहीं सड़क, कहीं भवन
कहीं सेना कहीं युद्ध
कहीं ऑसू, कहीं प्यार
कहीं बीमारी, कहीं ईलाज
वह दिल तोड़ने वाला
बेगाना हो गया।
वह वस्तुओं के विश्व का चक्रवर्ती सम्राट है,
कहीं कानून के अन्दर कानून,
कहीं कानून के बाहर कानून,
करता और कराता है,
रूकवाता और तरसाता है,
मोलना बेचना उसका संस्कार है,
घर हो, परिवार हो,
राज का काज हो,
धर्म अधर्म, साज बाज,
कल हो आज हो,
क्या कहूं, कहां कहूं, कहां न कहूं
बस वह अतृप्त अंगार है।

जगतप्रिय 'ताऊजी' ऐसे ही ताऊजी नहीं कहलाते हैं वे अपने इस नाम के अनुरूप ही लोगों की सहायता करते हैं, जुड़कर रहते हैं, जो भी उनकी छत्रछाया में आता है आप ही आप सुरक्षित महसूस करता है। यह अच्छाई उनके व्यवहार, विचार के साथ–साथ साहित्य में भी दिखाई देती है। अपनी कविताओं में बच्चों और युवाओं का आह्वान देशहित में कर्मशील होने के लिए लगातार करते रहते हैं। देशहित में समर्पित अपने सर्वस्व जीवन की तरह ही वे अपने विचारों में भी देश और परमार्थ के लिए जीते हैं।

'ऐ मेरे अरमानों/सपनों में मचलो/आशा के आसमान में/साहस की भरो उड़ान '–इन चार पंक्तियों में 'ताऊजी के जीवन का यथार्थ दृश्यमान है। वे युवाओं का आह्वान कर रहे हैं, वे जान रहे हैं कि युवा ही इस देश का भविष्य हैं। साहस और हौसले के साथ धरती, पर्यावरण और समाज का कल्याण करने उन्हें प्रेरित कर रहे हैं। अंतिम पंक्ति में यह रहस्य उजागर होता है कि अपने सपने किसे मानते हैं। 'तुम ईश्वर की प्रतिभा हो /मनुष्य के अवतार में।'

'हम देह ही नहीं, यह कहते /योगा करता, तन के द्वारा/आत्म समत्व उजागर है।' आध्यात्म दर्शन से परिपूर्ण पंक्तियां यही बताती हैं कि हम अपने तन के माध्यम से योग करते हैं और आत्मा शुद्ध होती है। आत्मा और शरीर को समझाती कविता है 'को अहम्'।

'मेरे उलटे–सुलटे बोल' कविता पर टीका लिखी जाये तो ग्रंथ तैयार हो सकते हैं। 'ताऊजी' की श्रेष्ठ कविताओं की माला का यह पैंडल है। 'मैंने सपनों में सपना खो दिया' से शुरू हुई कविता उनके जीवन को पुनः चित्रित करती है कि जब स्वयं को 'खो' देता है व्यक्ति तब कहीं जाकर वह 'कुछ' पाता है। और उस वक्त व्यक्ति जो आनंद पाता है तब कहता है–'हुआ निहाल, ऐसे तन मन से/ तन की भाषा और मन की चाल/ एक हो जाये तब यह आनंद'।

'पृच्छा' कविता का अंतिम हिस्सा 'मैंने इन शब्दों को जगाया नहीं/ये उतरे हैं/मुझे जगाने' अद्भुत सोच का दार्शनिक उत्तर है। हम जिन तथ्यों को सांसारिक भ्रमण का कारण मान कर चलते हैं वही हमें आध्यात्मिक जीवन पर चलने को प्रेरित करते हैं मात्र। उनसे कैसे प्रेरित हैं हम यह महत्वपूर्ण है।

'अहिंसा/सत्य के प्रति/प्रेम का/चरमोत्कर्ष है।' यही तो अहिंसा की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा है। यदि यदि व्यक्ति सत्य के प्रति समर्पित है तो वह हिंसक हो ही नहीं सकता है। (गांधी दर्शन)

शाश्वत मूल्यों की ऊर्जा/अनुभवों का आत्मिक बल है/उसको साधे, सब सध जायेगा।' गहरे दर्शन से जुड़ी ये काव्यात्मक पंक्तियां 'अनुभवों का प्रश्न' कविता की है जो ऊर्जा शाश्वत मूल्य यानि शाश्वत नैतिकता, सत्य, अहिंसा, प्रेम आदि की ऊर्जा से ही अनुभव यानि व्यवहार में जीवन चलता है। इन ऊर्जा स्रोतों का चिन्तन, मनन और जीवन में अवतरण जीवन को सुखमय बना देगा।

'मेरी श्रद्धा/कभी नाव/कभी मल्लाह/कभी पतवार/तीनों अलग–अलग नहीं/उद्देश्य सगी/स्वतंत्र रही।' उत्कृष्ट उद्देश्यों और विचारों की कविता की बानगी है यह पंक्तियां, तीन अलग–अलग चीजें हैं जिनका स्वतंत्र अस्तित्व है पर उनकी आपसी श्रद्धा, विश्वास एक हो जाये तो नदी पार हो जाती है।

'मेहमान' कौन है और उसकी वास्तविक पहचान क्या है ? दर्शन का चरम छूती यह कविता बता रही है। साथ ही 'ताऊजी' का जीवन सत्व भी उजागर कर रही है। 'चौरासी लाख योनियों के/कोलाहल में घिरकर/अपने में रम गया हूं।' यानि साधुत्व की प्राप्ति, स्वयं की पहचान, जान लेने का विचारणीय विश्लेषण!

'मुझे गुलाब ने/फूल नहीं कांटे दिये,' जीवन को देखने के दो तरीकों का वर्णन एक फूल के माध्यम से बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। गुलाब में कांटे देखने वालों को कांटे नजर आते हैं तो उन्हें सुन्दर सुगंधित फूल नजर नहीं आता। नकारात्मक सोच का उदाहरण है।

'जीवन में / बोध देती हर चुनौती,' ये पंक्तियां वीर भोगता भक्ति, कविता की हैं। जीवन के संग्राम में जो वीर होगा उसे ही सम्मान मिलेगा या यू समझे अच्छा जीवन प्राप्त होगा। जीवन में आने वाली प्रत्येक चुनौती जीवट व्यक्ति को एक शिक्षा देने आती है। यदि यह बात समझ आ जाये तो जीवन सफल हो सकता है। जो ये समझ जाता है वही वीर कहलाता है।

मजा यह कि ईमान /खुद खोज रहा ईमान / पैसा हर कहीं उसे घेर रहा, कितना सच है इन पंक्तियों में हम सभी ये अनुभव कर चुके हैं। पैसा सबसे ज्यादा जरूरी है उसके साथ ही अतृप्त अंगार भी है। पैसे का होना कभी आदमी को खुश नहीं कर सकता है, फिर भी वह पैसों के पीछे भागता रहता है। वह ही दुविधाकारी होता है ये पैसा।

ताऊजी की कविताएं जीवन दर्शन के करीब हैं। यथार्थ का खूबसूरत वर्णन उनकी कविताओं की शोभा है तो वहीं शब्दों का चयन कविताओं की जान है।

बंजारन

रत्न कुमार सांभरिया
भाड़ावास हाउस,
सी–137, महेश नगर
जयपुर–302015
राजस्थान
09460474465

सांप की लकीर– सी सर्पाकार सड़क खेतों–खांखरों से होती गांवो–ढाणियों की ओर निकल गई थी। समूची सड़क सुनसान और सन्नाटा समेटे थी, दूर तक। देह उधड़ी थी। रोड़ियां खड़ी थी। गढ्ढों–खांचों भरी थी, पूरी की पूरी। आता–जाता कोई वाहन उसके ऊपर से खड़–खड़ करते हुए गुजर जाता। जैसे कोढ़ उतरी काया हवा के हलके झोंके से सिहर जाती है, सड़क थोड़ी–सी आवाजाही से भी दर्द से कराह उठती थी।

हालांकि रूना की जवानी अतीत हो गई थी, परंतु ऊंचे से कद की पतली–सी सरोटन की उस बंजारन में किशोरियां सा गरूर बरकरार था। उसकी कमर में लचक होने के कारण चाल में मटक थी। वह अपने मन की मालकिन थी।

सड़क के मोड़ पर रेगिस्तान में नखलिस्तान की तरह एक दुकान आबाद थी। अद्धों, पौनों, खौरों और गार–मिट्टी से जुड़ी नंगी दीवारों पर टीन–टप्पर रखे हुए थे। अंदर चाय–पानी, बिस्कुट, नमकीन और पेठा जैसी जरूरत की चीजें मर्तबानों में थी। कोयलों की भट्ठी लहक रही थी।

दुकान के सामने पड़े मूढ़े–मूढ़ियों पर तीन जने आ बैठे थे। एक औरत। दो मर्द। मर्द अगल–बगल। औरत उनके सामने। तीनों के तीनों अधेड़ावस्था। चालीस–पैंतालीस के दरमियान। तीनों बंजारा।

औरत! रूनाबाई। लाड़ से उसे रूना पुकारते। वह छींट का ऊंचा– सा घाघरा और कुरती पहने थी। सिर पर सितारों से जड़ी कढ़ाईदार, लूगड़ी ओढ़े थी, काले रंग की। फावड़ा–गैंती बजाते, विषम झेलते, पकते–तपते वक्त को ठेलते उसका वह गोरा रंग, कलाइयों से बांह तक पहने बाजूबंद सफेद चूड़ा की भांति मैल, धूल, धुंआ पकड़ते फीका पड़ता जा रहा था। उसके कान चिपके थे। कानों की लवों में चांदी के भारी–भारी झुमके झूल रहे थे। उसके होंठ भले ही नेक गोटे थे, लेकिन नाक में पहनी सोने की चौड़ी गोल नथ ओष्ठसंधि पर पड़ी उस दोष को ढंके–ढांपे थी। नथ से बंधी काली डोर बाएं कान से लिपटी थी। गिरे नहीं। छिने नहीं। वह गले से चांदी की भारी हंसुली पहने थी, अगर सांस या खोट न हो, किलो भर होगी।

मर्द। उसके ठीक सामने दायें–बायें बैठे सादूराम और दोदूराम। जवानी के ज्वार रूना को होश नहीं, साथ–साथ मजूरी करते उसने उन दो युवा भाईयों को कब अपने प्रेमाश्रय में ले लिया था। मां–बाप, घर–परिवार सगे–संबंधियों ने हाथ जोड़–जोड़ खूब समझा लिया लेकिन जन्म की जिद्दन रूना टस से मस नहीं हुई। उसने उनकी बोलती यह कहते हुए बंद कर दी थी कि द्रौपदी के पांच पति होकर वह पतिव्रता थी, रूना के दो धनी हैं, तो क्या आसमान टूट पड़ा ? वह ना गिरी ? ना ऊदली।

बेटों के बराबर का बड़ा हो जाने पर बाप उन्हें अपनी भुजाएं बताकर अहम दर्शाता है। रूनाबाई अपने मर्दों को अपनी ताकत बताया करती थी। तीनों थे भी एक मिजान। धूप में छाया की तरह। छाया में काया की तरह।

हालांकि रूना की जवानी अतीत हो गई थी, परंतु ऊंचे से कद की पतली–सी सरोटन की उस बंजारन में किशोरियां सा गरूर बरकरार था। उसकी कमर में लचक होने के कारण चाल में मटक थी। वह अपने मन की मालकिन थी। संदूक की चाबी अपने नाड़े से बांधे रहती थी। तीनों के एक लड़की थी, सविताबाई। दसवीं किताब पढ़ रही थी वह।

रूनाबाई का लावा की भांति उफनता आक्रोश आज अहम बात थी, जिसके निमित उसके ये दोनों पति थे। अगर उनकी मूंछों में खम है, तो रूना की बात में भी दम है।

पचासेक की वय का दुकानदार सांवले रंग, गठीले बदन का था। उसने सिर पर छींटदार भारी पग्गड़ बांधा हुआ था। ऊंची सी धोती पर डोर बंधा कुरता पहने था। कानों में सोने की मुर्कियां झूल रही थीं। वह ऊंचा सुनता था। उसे कम सूझता था। वह उन तीनों के पास आकर खड़ा हो गया था। उसने मोटे फ्रेम के चश्मे के नीचे बुझती आंखे टिमटिमाई।

उन तीनों की तीन–तीन अंगुलियां एक साथ दुकानदार की ओर संकेत करती उठीं। दुकानदार बात समझ कर अपनी भट्ठी की ओर बढ़ गया था।

रूनाबाई के ये दोनों पति एक दूसरे से न बोले, न चाले। चुप होंठ और छुपी नजरों से बैठे रहे।

दुकानदार हाथ की अंगुलियों से दबाए चाय के तीन गिलास लाया और उन तीनों को एक–एक गिलास पकड़ा कर लहकती अपनी भट्ठी के पास जा खड़ा हुआ था। तीनों

सड़–सड़, सुरड़–सुरड़ चाय पीने लगे थे। तीनों के अंतःकरण में अपनी–अपनी पीड़ाएं थी, तनाव बरपा था।

सादूराम और दोदूराम, दोनों भाइयों की उम्र में साल–सवा साल की बीछा (अंतर) था। सादूराम बड़ा। दोदूराम छोटा। दोनों कद–काठी एक जैसी थी। न अदने। न ऊंचे। न मोटे। न बड़े। रंग उतरते मेघों–सा सांवला था। वे सफेद रंग की ऊंची–सी धोती पर डोरी बंधे मैल खाए कुरते पहने थे। उनके सिर पर लट्ठे (मोटा कपड़ा) के भारी–भारी पग्गड़ बंधे थे। दोनों के कान बिंधे थे लेकिन अब रूंधते जा रहे थे। एक वक्त उनमें मुर्कियां रही होंगी। सादूराम के पांवों में चप्पलें थीं और दोदूराम कुरम की पाती जुड़ी जूतियां पहने था।

सादूराम उधेड़बुन में डूबा अपनी ललाट पर उंगलियां फेरे जाता था। आंखे सिकुड़ती–फैलती थीं। घुट कर दम तोड़ते शब्द उसकी अंतर्वेदना का बोध था। चाय पीकर उसने गिलास नीचे रख दिया था। रूनाबाई को सुनाते दोदूराम से रू–ब–रू कहने लगा– 'यह ससुरी अपनी जात है न, हथेलियों पर कस्सी से पड़े फफोला फुड़ाते–फुड़ाते मर–खप जाएगी, पर टाबरा ने दो आखर ना सिखावगी।'

उसने दोनों हाथों की अंगुलियां एक दूसरे में फंसाई और चटका कर फफोलाई हथेलियां आकाश को दिखाने लगा, मानो अंबर बाबा की फजल चाह रहा हो।

दोदूराम ने चाय पीकर गिलास नीचे रख दिया था। उसने दोनों कुहनियां जांघों पर रख ली थी और चिंता से विदीर्ण चेहरा हथेलियों पर टिका लिया था। एकाएक उसने धोती उघाड़ कर अपनी जांघ पर थपक मारी, मानों मक्खी मच्छर उड़ा रहा हो। वह रूना से मुखातिब हुआ और फिर मुंह फेरता बोला–'यो तो खाली–पीला की बकवास है कि लड़कों दो टावरां को बाप है। यो भी धियान दो, ऊकी सिरकारी नौकरी है। घर को पक्को ठियो है। दो बीघा क्यार है। ऐसा खाता–पीता घर लड़की दे रहा हां, तो जुरम ना कर रहा। कहावत है ना, अकल बड़ी के भैंस।'

सादूराम ने रूनाबाई की ओर कातर दृष्टि लखा। उसने दोदूराम की हां में हां मिलाते उसकी बात सवाई की–'दोदू ठीक कह दूं। अपनी बिटिया जिन्दगी भर राज करेगी। मेम कहावेगी। म्हारी तरह धूप–तावड़ा में तपनों तो दूर, छाया में रहेगी चौबीस घंटा। पर भैस बड़ी है, अकल छोटी।' आकाश की ओर ऐसे देखने लगा, जैसे तीतरपंखी मेघों के मिलने और जुदा होने की अठखेलियां निहार रहा हो।

रूनाबाई को उन दोनों की बात शूल से बुरी चुभी। रोम–रोम सुलग उठा था, उसका। चेहरा तंबिया गया था। वह इतना गुस्साई कि अगर वे दोनों उसके पतिदेव नहीं होते, जूती निकाल सिर–सिर मारती। उसने हम कदर निरखा वे उसके मर्द नहीं गैर–कपटी हों।

रूना को आज पहली दफा ऐसा अहसास हुआ था कि वह दो सिरों की जिस नाव में बैठी अपने चातुर्य के चप्पू से जीवन नैया खेए जा रही है, वह दो नावों पर सवार है। नावें उसे विपरित दिशा में लिए जा रही हैं। यह तो उसके विश्वास में विष घोलना है।

रूनाबाई के चांदी के बोरले के नीचे ललाट, भैंहों, कपोलों, चिबुक तथा पांवों में पहनी कड़ियों से ऊपर पिंडलियों पर गोदना था। उसने चाय का गिलास नीचे रखकर अपनी दोनों पिंडलियों के गोदनों पर खोर की थी। उनसे आंखें मिलाते कहने लगी–'जिन्दा मक्खी ना निगली जाए। वो लड़का ने अपनी अनपढ़ बीरवानी मार दी। अगर ऊनै ऐसी ही पढ़ी लिखी लड़की की भूख थी तो अपनी घरवाली ने खुद पढ़ातो। सिम्मान पातो। दो बालकां की मां पीट–पीट घर से निकाल दी। तंग आई जोहड़ में जिनगानी होम दी अपनी। ना–ना–ना मैं तो अपनी फूल सी लाड़ो ना ब्याहूं ऐसा पापी के।'

वह कहती गई–'थम दोनों तो बाप हो के गैर हो गया। मैं मां हो के अपनी बेटी को बुरो चेतूं कीड़ा के कुंड में पड़ी सडूं।' रूना के दांत भिंच गये थे और भौंहें सिकुड़ गई थी। पश्चिमांचल की ओर जा रहे भानु की किरणों से उसकी सिकुड़ती भौंहों के गोदना चमक उठे थे।

दोदूराम रूना के एतबार के लिए उससे कहने लगा–'ऊकी घरवाली तो अपने आप ही मर गई। बात मिट–सिट, आई गई हो गई। लड़का के पेट पाप नी है। मैं फेर कहूं। राज करेगी म्हारी बिटिया। बावली बात करना छोड़ दे तू। हम ब्याह दे आया।'

रूना को ऐसा लगा जैसे उसकी कामनाओं की बगिया में बबूल उगाया जा रहा है। रूना की हृदय कलिका सुलग उठी थी।

उसने अपने दाएं हाथ पर सादूराम गोदवा रखा था और बाएं हाथ में दोदूराम। रूना ने सादूराम के गोड़े पर दायीं उंगली गड़ाई और दोदूराम के गोड़े पर बायीं। आंखें तरेरते उनसे बोली –'तुम दोनवां में कोई एक अपनी छाती पे हाथ धर के गारंटी से कह दे, लड़की मेरो खून है। हो यो बात दाई से गुवाड़ी जाने सवितबाई, रूना की जनी–जाई है।'

रूनाबाई की बात दोनों भाईयों की छाती में आर–पार होकर भी उनके होंठ सिल गये थे। आंखें पथरा गई थीं।

दोनों बगलें झांकने लगे थे। यह बात आज उन दोनों के बीच अविश्वास की रेख थी कि सवितबाई का बाप कौन ? वे दोनों भाई रूना के हाथ पर गुदे गोदना की तरह दायां–बायां अपना मान रहे थे।

कहीं गांव–गोठ, मेला–ठेला, ब्याह–कारज, काम–मजूरी जाना हो, बच्ची को आधी राह सादूराम अपने दायें कंधे पर और आधी राह दोदूराम बायें कंधे पर बैठाता था। बच्ची ने पांव लिए तो सादूराम उसको अपने दायें हाथ की उंगली पकड़ाये रहता और दोदूराम बायें हाथ की। वे दोनों उसे इसी प्रकार दायां–बायां हाथ पकड़े स्कूल ले गये थे और नाम मंडवा आये थे।

एक अफसोस भरी सांस भरकर दोदूराम अपने सिर का पग्गड़ जांघों पर रख लिया था। सादूराम ने भी अपना पग्गड़ जांघों पर रख लिया था। दोनों ने अपना–अपना सिर खुजलाया। अपमान को गरल की तरह पीकर सादूराम ने रूना को समझाते हुए दिलासा दी–'अब भी मान जा, लड़को मन को कालो ना है। हंसुली...।'

दोदूराम ने भी वही बात दोहराते हुए कहा–'बिल्कुल सोलह आना।'

रूना ताव में आ गई थी। उसने दोनों के गोड़ों पर फिर उसी तरह अंगुलियां गड़ाई और तमक कर बोली– 'ना मानूं। झूठ की बुहारी से सांच की सफाई ना हौवे।' उसने दो–तीन लंबी–लंबी सांसे भरी और तुनकती हुई कहने लगी– 'बापकाना (हरामी), मां–बेटी ने बीच में लिया बिना ओले–ओले (चुपके–चुपके) बेटी को ब्याह दे आया। दारू पी, रोकड़ा ले आए अब घरवाली की रकम बेचो ब्याह की ब्यौत। शर्म आनी चाहिए। मूंछ दाढ़ी धोली आ गई दोनवा के।'

रूना की अंगुली–गड़ाई से उन दोनों के पांव हिले और जांघों पर रखे पग्गड़ धरती पर गिर पड़े थे। दोनों को ऐसा महसूस हुआ उनके पग्गड़ जमीन पर नहीं गिरे, रूना ने उनकी पगड़ी उछाल दी हो, सरेराह। उनके भीतर गोड़ली (गोड़े) मोड़े बैठा पशु–पुरूष उठ बैठा था।

आवेश भरे हाथों उन दोनों ने अपने–अपने पग्गड़ फिर सिर पर रख लिये थे। दोनों के बीच नैना–सैना हुई। उनके हाथ एक साथ रूना की गरदन की ओर बढ़े और गले में पहनी हंसुली के दोनों सिरे पकड़ लिये थे।

बिगड़े हाथी के क्रोध की कूत हो सकती है। छोहभरी औरत के गुस्से की थाह नहीं होती है। हाथ हंसुली खींचे। चौडाएं। खींच ले जाएं। रूनाबाई ने अपने दायें हाथ से सादूराम का तथा बायें हाथ से दोदूराम का हाथ पकड़ा और झटक कर दूर कर दिए थे। घायल बाघिन की आंखों की आंखों में उतरे लहू की भांति सुर्ख आंखे लिये वह उठकर अपने झोंपड़े की ओर चल दी थी।

दोनों पति अपनी पत्नी रूनाबाई से गुंथते, खींचातानी करते, लड़ते–झगड़ते गाली–गलौज करते दायें–बायें, आगे–पीछे कभी त्वर, तो कभी हौले तो कभी हौले तो कभी रूकते–ठिठकते उसके कदमों के साथ–साथ चले जा रहे थे। दोनों के हाथ रह–रह कर उसकी हंसुली की ओर बढ़ते और वह उन्हें दूर कर देती थी। रूनाबाई समूची धरती और सारे आकाश को सुना–सुना कर सादूराम और दोदूराम को बखानती जा रही थी–' नपूतों' चाहे ई कान सुन लो, चाहे ऊ कान। मैं असल बंजारण हूं, अपनी नाड़ (गरदन) कटवा लूंगी, पर बेटी से धोखो ना करूंगी। अगर हम मां–बेटी पर बेटी ने सताओगा, कीड़ा पड़ेगा थारी काया में। नरक सड़ोगा। पानी तरसोगा।' और उसके मुंह से गालियां निकलती थीं। चुभती सान उतरीं।

दुकान पर तीन–चार ग्वाले बैठे हुए थे। गप्पाने। वे बंजारा दंपती की छीना–छपटी और लड़ाई–टंटे को देखते रहे, आंखों से ओझल होने तक। पगडंडी के दोनों ओर सरसों के खेत कट रहे थे। खेत काटते स्त्री–पुरूष गेरा (खुद काट कर हाथ में पकड़ी फसल–पूंजी) और दरांती लिये तमाशबीनों की तरह खड़े–खड़े उन तीनों की धींगाधांगी देख दांत निकाल रहे थे। पगडंडी–पगडंडी चिड़ियाएं बैठी थीं, खेत चुगने इनका शोरगुल सुनकर वे उड़ कर दूर जा बैठतीं और उनके गुजरते फिर वहीं आ बैठती थीं।

दोनों मर्दों के हाथ रह–रह कर रूना की हंसुली की ओर बढ़ते थे और वह झुंझलाकर उन हाथों को दूर कर देती थी। रूना के पैर अचानक बीच राह ठिठक गये थे। वह इस ख्याल से कि दोनों को गरज भूत सवार है। झोपड़ी में उस अकेली को मीस–मोस काबू कर लें और हंसुली खींच ले जाएं। सुल्फ सौदा कर लावें ब्याह का। वह उन्हीं कदमों से वापस लौट पड़ी थी।

तीनों दुकान के पास आकर सड़क की ओर खड़े हो गये। तीनों ने दुकानदार की ओर फिर तीन–तीन उंगलियां एक साथ उठाईं। दोदूराम के कंधे पर पुरानी–धुरानी सी एक धोती पड़ी थी। वह धोती उसने सड़क के दसेक फीट दूर फेली रोड़ियों पर बिछा ली थी। वे तीनों धोती पर बैठ गये थे। सादूराम दायें। दोदूराम बायें। रूना बीच में। रूना गले की हंसुली छोड़कर दोनों हाथ आकाश की ओर नचाकर बोली–'अगर ऐसो अड़ंगो अड़ावोगा, कुछ न पाओगा। भले

अलग रहो दोनों। मेरी बेटी पढ़ेगी। मैं मजूरी करके ऊनौ पढ़ाऊंगी।'

सादूराम और दोदराम दोनों रूनाबाई की ओर इस कदर टुकूर–टुकूर निहारे जाते थे, जैसे रूना मछली और वे बगुले। सादूराम ने कुरते की जेब में पड़ी सुल्फी और तंबाकू की थैली निकाल ली थी। उसने सुल्फी में गोल जमाई और ऊपर तंबाकू रख दी थी। दोदूराम ने जेब में पड़ी माचिस और पुरानी–सी जेवड़ी (मूंज की रस्सी) का टुकड़ा निकाल लिया था। उसने टुकड़े को तोड़–मरोड़कर सादूराम के हाथ में पकड़ी सुल्फी पर रखा और तीली जलाकर हाथ की ओट, आग पकड़ा दी थी। सादूराम ने खींच–खींचकर सुल्फी सुलगा ली थी। दोनों सांस–सांस खींच–खींचकर सुल्फी पीते रे और आंखों–आंखों में बतियाते रहे। जब तंबाकू जलकर राख हो गई तो सादूराम ने उसे सुल्फी को झड़काया, थोड़ी देर ठंडी की और कपड़ा लपेटकर फिर अपनी जेब में पटक ली थी, तंबाकू की थैले के साथ।

दुकानदार तीन चाय ले आया था। तीनों ने फूंक–फूंक घूंट–घूंट चाय पीकर गिलास नीचे रख दिए थे। उन दोनों ने रूना को फिर समझाते हुए कहा– 'रूना मान जा म्हारी बात। बेटी.....।'

रूना ने दोनों हाथों की पांच–पांच अंगुलियां दिखाते उनके सामने तीन–तीन बार की और फिर हाथ आसमान की ओर कर दिया था। आशय था–'लड़का दूजवर है। उम्र तीस बरस से कहीं ज्यादा है। वह दोनों हाथों की हथेलियां ऊपर तले कर थोड़ा–सा बनाकर रूक गई। फिर उसने उस गैप को थोड़ा बड़ा कर दिया था। मानो कहती थी, लड़के के दो टाबर भी हैं।' वह होठों को गोल कर ग्लानि–सी प्रकट करती बोली– 'हुं– हुं मेरी लाड़ो तो अभी खुद टाबर है। अगले महीने चेत में सोला (सोलह) की होगी वह।'

रूना उखड़ती–सी कहने लगी– 'थम ने ता आंखां पे ठीकरी धर ली। भीतर मार लियो अपनो मैं तो ऊकी मां हूं। दूध पिलायो छाती को। गैर ना बनूं।'

'समझ जा?' दोदूराम ने आंखें बताई।

वह बोली– 'ना'

चाय पीकर तीनों धोती पर लेट गए थे। सादूराम दाएं। दोदूराम बाएं। रूना बीच मे। रूना दोनों हाथ हंसुली के दोनों सिरे पकड़े थी। पांच–सात स्कूली लड़कियों की एक टोली सड़क से गुजर रही थी, बस्ता लिये। स्कूल की ड्रेस पहने। उनमें रूनाबाई की बेटी सवितबाई भी थी। करूणा की प्रतिमूर्ति–सी वह षोडशी, शर्म–गुंथी थी। वह अपने चेहरे की लुनाई हाथों से ढांपती रूनाबाई के पास धोती के कोने पर आ बैठी थी। उसने भावुकतावश अपनी मां की गलबहियां ले ली थीं। रूना उठ बैठी थी। उसकी आंखें टकटकी बांधकर बेटी को देखती रहती थीं देर तक। सवितबाई का सिर पुचकार कर उसने पूछा– 'बेटी इनके कहे तेरा ब्याह का पंदरा दिन रह गया। आखिरी बात दे तेरा मन की बात ऊ लड़का से ब्याह करागी ?'

सवितबाई मां से और चिपक गई थी सुबकियां रोक कर होंठ बिसूरती। कहने लगी– 'मां गरदन कटा कर भी ना करूं?'

रूना ने अपने गले की हंसुली के दोनों सिरे चौड़ा कर हंसुली निकाल ली थी। उसने नाक की नथ और माथे का बोरला निकाल कर भी उनके बीच पटक दिया था। तीखे कंठ बोली– 'लो थारी टूम। कर लो ब्याह। कड़ी तो मेरी मां की है। कतई ना दूं और अपनों झोपड़ों भी संभालो।'

दोनों मां–बेटी एक दूसरी से गुथी गलबहियां लिये–लिये उठ खड़ी हुई थी।

बस्तर में आस्था से जोड़कर वन एवं वनौषधि पौधों का परम्परागत् संवर्धन

वनवासी संस्कृति में पेड़–पौधो का विशेष महत्व है। एक वनवासी परिवार, अपना घर अपने पशुओं की सुविधानुसार बनाता है एवं छत्तीसगढ़ का वनवासी क्षेत्र वनौषधि पेड़–पौधों के लिये विख्यात है, यहां इन औषधि महत्व के पेड़–पौधों से जुड़ा परम्परागत् ज्ञान आस्था के साथ संरक्षित किया जा रहा है। क्षेत्र में परम्परागत् ज्ञान के विशाल भण्डार एवं यहां पायी जाने वाली औषधि महत्व की जड़ी–बूटियों से अनेक असाध्य रोगों का परम्परागत् रूप में उपचार किया जा रहा है। जहां गांव में सिरहा, गुनिया द्वारा पोलियो, मस्तिष्क ज्वर, सर्दी–खांसी, हड्डी जोड़ना, पीलिया रोग, महिला की प्रसव क्रिया आदि में परम्परागत् रूप से परम्परागत वैध चिकित्सा बस्तर में प्राचीन काल से चली आ रही है, जो आज भी जीवित है।

वनवासियों में परम्परागत रूप से ऐसी मान्यता है कि वनवासी के देवी–देवता वृक्ष पर रहते हैं सभी प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम में विभिन्न प्रकार के वृक्षों का तना, टहनी व पत्तियों का उपयोग किया जाता है एवं बिना इसके पूजा–अर्चना अपूर्ण मानी जाती है। गर्मियों में शादी–विवाह पर पेड़ों की टहनियों को धूप से बचाने के लिये मंडवा के रूप में किया जाता है। वर–वधु के श्रृंगार हेतु मुकुट भी इन पेड़ों के पत्तियों से बनाये जाते हैं। शादी की प्रत्येक रस्म पेड़ों के साथ ही की जाती है। आदिवासियों द्वारा भोजन परोसकर खाने हेतु थाली और कटोरी के स्थान पर दोना–पत्तल का उपयोग किया जाता है। जामुन लकड़ी के लट्ठों एवं बल्लियों को जलस्त्रोतों में या कुंओं में बंधान के रूप में प्रयोग किया जाता है, ये जब एक गांव को पार करते हैं तो सरहद में एक–एक पेड़ की टहनी को निर्धारित जगह पर डालते चले जाते हैं। उस स्थान को बगरूमपाठ कहते हैं। त्यौहारों में जंगली फूल–पत्तियों को अपने घर में लगाने, पालतू पशुओं को वनौषधि फल–मूल खिलाने का, वनौषधि पौधे की फूल–पत्तियां, डंठलों को सिर में बांधने व घर में लगाने का रिवाज है। उपरोक्त उपचार से पशु विभिन्न बीमारियों से बचे रहतें हैं, क्योंकि ये तीज–त्यौहार में वनौषधि पौधों का सेवन जानवरों को कराते रहतें हैं। वनौषधि पौधों के सम्पर्क में आने से घर में स्वच्छ वातावरण निर्मित होता है।

आदिवासियों के देवी–देवताः–

प्रकृति पुजारी आदिवासियों का जीवन जंगल में गुजरता है, हवा, पानी, पहाड़, पर्वत सभी को देव तुल्य समझ कर पूजा की जाती है। यह सब कुछ उनकी संस्कृति एवं परम्परा में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। आदिवासी की जाति व्यवस्था में पेड़ पौधों, जीव जन्तुओं का विशेष महत्व होता है। वह अपने गोत्र के पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों से जीवन भर संबंध स्थापित रखता है। उनका कुल देवता वृक्ष हो या पशु–पक्षी उस कुल के लिये विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है।

विजय भारत
ठाकुर रोड, जगदलपुर
छ.ग.
मो. नं. 9425595780

इस मान्यता के अनुसार आदिवासी अपने कुल के वृक्ष, पशु–पक्षी का शिकार या वध नहीं करते हैं। उनके कुल देवता या देवी विभिन्न वन क्षेत्रों पर मुख्यतः सूची क्रमांक–1 के अनुसार वृक्षों पर विराजमान होते हैं। ये वृक्ष सामान्य वृक्ष से बड़ा व प्रभावशाली होता है। इन वृक्षों के आसपास विभिन्न प्रकार के वृक्षों का रोपण किया जाता है। ग्रामवासी अनेक दुर्लभ वनौषधि पौधों को देवगुड़ी में लगाकर अनेक गंभीर बीमारियों का उपचार देवगुड़ी से करते हैं।

आदिवासी संस्कृति में वृक्षों का उपयोगः–

आदिवासी संस्कृति में वृक्षों का बहुत महत्व है। जीवन मरण में वृक्षों का उपयोग मुख्य रूप से किया जाता हैं। प्रत्येक संस्कार में विभिन्न प्रजातियों के वृक्ष का उपयोग किया जाता है। आम, बेल–बांस, महुआ–साल–साजा पत्ता के अर्पण से प्रकृति पूजा की जाती है। विवाह संस्कार में महुआ, साल, साजा के खंबे बनाये जाते हैं। मड़वा में आम, बांस, जामुन, गुलर, छिंद पत्ती डाला जाता है। घास या फूल झाड़ू का भी उपयोग किया जाता है। मृत्यु संस्कार में शिशु मृत्यु होने से महुआ वृक्ष के नीचे दफनाया जाता है। गर्भवती स्त्री के मरने से गांव से दूर अर्जुन वृक्ष के नीचे दफनाया जाता है। स्वभाविक मृत्यु होने पर उसी गांव में दाह संस्कार या दफनाया जाता है, जिस गांव का निवासी है। अन्यत्र गांव पर किसी भी दशा में दफनाया या दाह संस्कार नहीं किया जाता है। विषम परिस्थिति में दूसरे गांव में दाह संस्कार या दफनाना आवश्यक हो तो उस गांव के माटी पुजारी से अनुमति लेना आवश्यक होता है।

सूची क्रमांक–1:–

क्रमांक	देवी देवता का नाम	उनसे संरक्षित वनौषधि पौधे	दैवीय स्थान पर वन क्षेत्रफल	दैवीय स्थान पर पाये जाने वाले वृक्ष	अभियुक्ति
1	बुढ़ा देव, लिंगोपेन, शिव	तुलसी, सतावरी, सर्पगंधा, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर, अमलतास, करंज	2 से 5 एकड़	आक, सेमल, आम, अमलतास, बड़, पीपल, नीम, कटहल, बेल, साजा, जामुन, बीजा, साल, करंज, इमली, सल्फी, छिंद, हजारी	मुख्य रूप से छाया, एवं अन्य देव स्थान पर किनारे रहता है, फूल का पौधा भी जरूरी होता है।
2	रावपेन	तुलसी, सतावरी, सर्पगंधा, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर, साजा, करंज	आधा एकड़	बड़, पीपल, नीम, वरूण, कटहल, साजा, आम, महुआ, सल्फी, छिंद, हजारी, कुसुम	
3	फिरन्तीन माता	तुलसी, सतावरी, सर्पगंधा, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, बरगद, पीपल, गूलर	आधा एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, साजा, वरूण, गूलर, कनेर, हजारी, बांस, कुसुम	
4	शीतला माता	तुलसी, सतावरी, सर्पगंधा, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर, महुआ, आम	1 से 3 एकड़	बड़, पीपल, नीम, वरूण, कटहल, हजारी, साल, साजा, अर्जुन, बांस, कुसुम, महुआ, आम	
5	मावली माता	तुलसी, सतावरी, सर्पगंधा, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	2 से 3 एकड़	बड़, पीपल, नीम, आम, इमली, सेमल, कटहल, वरूण, हजारी, साल, बरगद, बांस, कुसुम	
6	भरैम बाबा (विष्णु जी)	तुलसी, सतावरी, सर्पगंधा, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर,	आधा से 1 एकड़	आम, बड़, पीपल, नीम, कटहल, साजा, जामुन, साल, वरूण, कुसुम, हजारी	
7	गिनिस पोटिया मखना मांझी	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर,	आधा एकड़	आम, बड़, पीपल, नीम, कटहल, जामुन, अर्जुन, वरूण, कुसुम, करंज	
8	चिंगराज	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर,	एक एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, साजा, जामुन, साल, वरूण, अर्जुन, सेमल, हजारी, वरूण	
9	ठाकुरदई	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर, अर्जुन	एक एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, अर्जुन, सेमल, हजारी, वरूण, महुआ	
10	हिंगलाजिन	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर, देवसियाड़ी, आम	आधा एकड़	आम, बड़, पीपल, नीम, कटहल, साल, अर्जुन, वरूण	
11	जगन्नाथ	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर, चंदन	आधा एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, अर्जुन, अमरूद, हजारी, वरूण, कनेर, करंज, साजा,	
12	दंतेश्वरी माता	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर, देवसियाड़ी, बेल, चंदन	दो से पांच एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, चंदन, महुआ, साल, कनेर	
13	भूमि हरिया	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी	एक एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, अर्जुन, साजा, हजारी, साल	
14	भूम हूंगा	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर, गूलर, साल	एक से दो एकड़	आम, बड़, पीपल, नीम, कटहल, अर्जुन, वरूण, महुआ, सेमल, कनेर, हजारी	

क्रमांक	देवी देवता का नाम	उनसे संरक्षित वनौषधि पौधे	दैवीय स्थान पर वन क्षेत्रफल	दैवीय स्थान पर पाये जाने वाले वृक्ष	अभियुक्ति
15	तुल डोकरी	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	आधा एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, अर्जुन, महुआ, हजारी, साल	
16	एडोमर्रा	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	एक से दो एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, सेमल, हजारी, ताड़, सल्फी, करंज, वरूण	
17	बेसकोड्डो	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	दो एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, साजा, हजारी, साल, हर्रा, बहेड़ा, सेमल	
18	उसे मुदिया	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	पांच से दस एकड़	आम, बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, साल, साजा, हर्रा, आंवला, बहेड़ा, शीशम, हजारी	
19	काणा हुर्रा	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	तीन से पांच एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, हजारी, जामुन,	
20	बीटाल	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	दो से तीन एकड़	बेल, बड़, पीपल, नीम, कटहल, हर्रा, वरूण, महुआ, करंज, कनेर, हजारी, बहेड़ा	
21	दुल्ला देव	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी	एक से दो एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, आम, अमरूद, हजारी	
22	ओडार पथरा	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	आधा एकड़	आम, बड़, पीपल, नीम, कटहल, साजा, वरूण, हजारी	
23	कोन्गाल डोकरा	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	पांच से बीस एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, हल्दू, साजा, हजारी, सेमल, मुण्डी	
24	बंजारी माता	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	एक से दो एकड़	आम, बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, सेमल,	
25	काली माता	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	एक से दो एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, आम, सेमल, कुसुम, करंज	
26	भैंसा सुर	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	आधा एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, सेमल, कुसुम, करंज, बेल, महुआ	
27	चिकटराज	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	एक से तीन एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, हल्दू, हजारी, सेमल, मुण्डी, बीजा, सल्फी, ताड़, महुआ, आम	
28	कोंडराज	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	एक से तीन एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, हल्दू, हजारी, सेमल, मुण्डी, बीजा, सल्फी, ताड़, महुआ, आम	
29	सिंहदेवड़ी	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर	आधा से एक एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, वरूण, हल्दू, हजारी, सेमल, मुण्डी, बीजा, सल्फी, ताड़, महुआ, आम	
30	रूपसिला	तुलसी, सब्जा, केला, सदासुहागिन, दुबी, कनेर, साल, आम	आधा एकड़	बड़, पीपल, नीम, कटहल, महुआ, आम, साल	

सूची क्रमांक–2

क्र	संस्कार का नाम	वृक्षों के नाम	वृक्ष का वह भाग जिसका उपयोग किया जाता है।
1	जन्म संस्कार	महुआ, सल्फी, ताड़, छिंद, बांस, साल	महुआ फूल, पत्ती, साजा पत्ती, सल्फी, ताड़ी का रस, अपामार्ग की जड़ (कासापानी)
2	विवाह संस्कार	महुआ, साल, साजा, बांस, आम, गूलर, जामुन, घास	तना, पत्ते सहित तना
3	मृत्यु संस्कार	महुआ, साल, कुसुम, बांस	वृक्ष तना, पत्ते, फूल
4	वृक्षों का विवाह	आम	वृक्ष
5	कुंवारा, कुंवारी, माता, पिता मरणोंपरांत विवाह	महुआ, आम, सागौन	वृक्ष के तने से बनाया पुतला और पुतली

आदिवासी संस्कृति में वृक्षों का विवाह परम्परानुसार किया जाता है। आम वृक्ष के विवाह के दौरान, विवाह रस्मों रिवाज के अनुसार आम वृक्ष की एक शाखा को फूआ को देने का विधान है, जिससे आपसी सम्बन्ध बना रहता है।

कुंवारा–कुंवारी, पति–पत्नी की मृत्यु के उपरांत उनके पुत्र या प्रपौत्र द्वारा महुआ की लकड़ी से पुतला–पुतली बनाकर सम्पूर्ण विधि विधान से विवाह सम्पन्न कर उन्हें कुल देवता में मिलाया जाता है। पुतला–पुतली को घर अथवा रास्ते के किनारे गाड़ दिया जाता है।

वनवासी द्वारा देव–वनों का संरक्षणः–

बस्तर में मनाये जाने वाले सबसे बड़े पर्व दशहरा में शहर से लगा हुआ साल वन कुम्हड़ाकोट, जिसमें दशहरा पर्व के अनेक विधि विधान सम्पन्न होते हैं, उसे परम्परागत रूप से वनवासी जाति धुरवा, भतरा, गोंड़ आदि जाति के लोग आस्था से जोड़कर संरक्षित कर रहे हैं। इसी तरह माड़पाल के वन में मंगुर लकड़ी जिसका उपयोग रथ बनाने में मुख्यरूप से उपयोग होता है उसे भी परम्परागत ढंग से संरक्षित किया जा रहा है। अपने निजी जीवन के उपयोग के लिये प्रत्येक ग्राम पंचायत में एक छोटा वन विकसित किया जाता है, जिसे **झार जंगल** कहते हैं। उसमें उगे बड़े एवं अच्छे पेड़ों को नहीं काटा जाता है तथा प्रत्येक ग्रामवासी परम्परागत रूप से उस जंगल की सुरक्षा करता है। बड़े जंगल को **देव–वन** के रूप में संरक्षित किया जाता है।

इसी तरह छत्तीसगढ़ में सबसे घना साल वन तिरिया, माचकोट जो शबरी नदी के तट से लगा हुआ है, वहां शिवजी (बूढ़ादेव) का मंदिर है। अनेक विद्वानों ने यह क्षेत्र रामायणकाल के राम वनगमन का क्षेत्र बताया है। इसलिये इस घने वन में चार सागौन के पेड़ हैं, जो राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन के नाम से आज भी मौजूद हैं, जिसका संरक्षण परम्परागत रूप से हो रहा है। यहां के धुरवा, भतरी, हल्बी लोकगीतों में इन वनों की महत्ता व संरक्षण का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार बस्तर के वनवासी क्षेत्रों में पाई जाने वाली जातियों में आस्था से जोड़कर पर्यावरण संरक्षण का कार्य परम्परागत रूप से हो रहा है।

काव्य

कफन

ये कवि,
तुम लिखते हो हरदम,
दुनिया की हर कड़ियों पर कविता।
कफन सा चादर बिछा दिखता नजारा।
जिसे ओढ़े तुम सो जाते हो।
जिन्दगी भर, कविताओं की –
सृजन से, बनती है चिता।
लोग उठाकर देखते हैं, कफन,
और देखते उसका हाल।
समाधि के पूर्व तक
लटका देते हैं लोग पेड़ पर।
कफन....
और हर एक राहगीर
चाहने वाला उसे देखकर।
देखते रहें उसे चिथड़े होते तक।
श्मशान घाट का पेड़, जहां लटका रहे।
एक भिखारी मांगता रहे भीख
उस कफन के लिए।

केशरीलाल वर्मा
आवास क्रमांक – III/TS/532
सुभाष नगर बचेली
जिला दन्तेवाड़ा (छ.ग.) पिन–494553
मोबाईल–9977636660, 8889908561

खाली हथेली

डॉ. सुदर्शन प्रियदर्शिनी
ओहयो यूनिवर्सिटी
यू.एस.ए.

तुम कुछ मांगती नहीं थी – न तुम्हें चाहिये था, फिर भी तुम चाहती थीं हर वस्तुस्थिति में मेरा होना। घर में, दीवारों में, कारों में, आंगन में, दालान में जहाँ भी जरा टूट फूट होती तुम्हें मेरे होने की प्रत्याशा रहती थी, जो मैं कभी पूरा नहीं करता–क्योंकि करना नहीं चाहता था। पता नहीं कोई वितृष्णा की गहरी लकीर थी जो तुम्हारे और मेरे बीच लक्ष्मण रेखा सी उदीप्त रहती। मैं इस रेखा के अंदर आता तो शायद जल जाता। मैं भस्म होना नहीं चाहता था। आम लोग जिसे पहले दिन बिल्ली मारना कहते हैं, पर बिल्ली मारते – मारते स्वयं ही बलि चढ़ जाते हैं, अपना–आप भूल कर विसर्जित हो जाते हैं – एक पावस भीगे आलते से रंगे पांवों के नीचे, किसी की रूनझुन पायल की कुहुक के साथ बंध जाते हैं। मैं स्वयं को इस तरह शहीद नहीं होने देना चाहता था, मैं स्वयं को जीवित रखना चाहता था।

उस पर तुम सहस्त्र पंखों वाली स्वछन्द तितली बन कर उड़ने में विश्वास रखने वाली और मैं खिड़कियां, दरीचे, दहलीजें बंद रखने की कोशिश करता–तुम फिर उड़ जातीं। यह आदत तुम्हारी कॉलिज में भी थी। कॉलिज में तुम मुझे बहुत सताती रही। उड़ी–उड़ी फिरती–कभी इस डाल तो कभी उस डाल। कभी इस मंडली की चहेती तो कभी उस मंडली की। मैं जानता था कि तुम्हारी अनन्य सुंदरता, अनूठी चाल पर सारा कॉलिज दीवाना था और इसी का लाभ तुम उठाती थी मुझे चिढ़ा कर – यों अंदर से मैं आश्वस्त था कि तुम मेरी हो, सिर्फ मेरी– और कहीं तुम भी उसी शिद्दत से यह जानती थी।

हम ने विवाह भी इस लिए किया क्योंकि हम एक जोड़ी के रूप में जाने जाते थे। हमारे घर तक में इसकी स्वीकृति हो चुकी थी। सभी इस को स्वीकार कर चुके थे कि एक ही क्लास के दो डाक्टर–बुरा भी क्या है। मुझे याद है– जब तुम फाइनल में प्रथम श्रेणी लेकर आई तो मेरे प्रति तुम्हारी बेरूखी बढ़ गई थी – क्योंकि तब तक तुम मेरा उद्देश्य जान गई थी कि मैं तुम्हारी हेकड़ी तोड़ना चाहता हूं। और एक दिन तुम्हारी एक नकारात्मकता का खुल कर बदला लूँगा – तभी से हमारे बीच एक गाँठ पड़ गई–जिसने मेरा पशुत्व और प्रभुत्व दोनों जगा दिये। तुम नहीं चाहती थी यह विवाह हो और इसके लिये तुम ने प्रयत्न भी किये पर वह समय और था। घर वालों के सामने और मेरे सामने तुम्हारे किसी तर्क ने काम नही किया। आज जिस हथेली में मैं तुम्हारा कोमल हाथ थामे बैठा हूँ उसी में तुम्हे दबोच–कर अट्टहास भरी हंसी हँसता रहा। शायद मैं ही एक ऐसा पुरूष हूँ जिस के अंदर का जानवर सदैव जीवित और बुलंद रहा। यह जानवर होता तो सारे पुरूष वर्ग में है पर कभी–कभी या शुरू–शुरू की नवेली चूमा–चाटी में पुरूष एक पालतू चौपाया बन कर अपनी दानवी–प्रवृत्ति को दबा लेता है और सारी उम्र हिनहिनाते हुए जिंदगी बिता देता है या शनैः शनैः अपना रूप बदलता रहता है –कभी खूंखार–तो कभी पालतू खरगोश।

लेकिन मैं जब तुम्हें यहाँ लाया तो लगा जैसे सारा अमेरिका– मेरी इस कुव्वत का एहसान मानता है। यहाँ तक कि तुम्हारा सारा कुनबा तुम्हारी सहेलियां भी–तुम्हारे भाग्य पर इतराती थी। केवल नहीं मानती थी तो तुम ! और यही मैं मनवाना चाहता था। क्योंकि तुम मेरे साथ आयी थी। मेडिकल कालेज में जहां हम पढ़ते थे– तुम मुझसे आगे ही रहती थी। पर जानती हो मैंने कभी उस बात को कोई तरजीह नहीं दी। मेरे मन में, मेरे घर में –मेरे आसपास यह इतना बुलंद था कि मैं पुरूष हूँ और तुम्हारा दर्जा या किसी भी लड़की का दर्जा मुझ से छोटा ही रहेगा। याद है जयमाला के समय मुझसे कितनी शिद्दत से मनवाया गया था कि तुम्हारे सामने सर नहीं झुकाना–नहीं तो सदा के लिए निकम्मा गुलाम हो जाऊँगा। दोस्त–मित्र भी चिल्ला–चिल्ला कर, उचक–उचक कर न झुकने की सलाह दे रहे थे। आखिर तुम्हारे भाई ने तुम्हे तनिक उठा कर – जयमाला मेरे गले में डाल दी थी। मैं अंदर ही अंदर अपने दोस्तों का कितना आभारी था कि मुझे झुकने से बचा लिया। मुझे लगता मैं कहीं शिखर पर बैठा तुम पर गोलियां दागूं और उम्र भर दागता रहा। तुम सुबह सुबह उठ कर मेरा और बच्चों का नाश्ता बनाती। भाग–भाग कर उन्हें तैयार करती और फिर भाग–दौड़ में अस्पताल के लिये निकलती। कई बार तुम्हें देर हो रही होती तो मैं कार लेकर निकल जाता – बिना यह सोचे कि तुम कैसे जाओगी–कैसे पहुँचोगी–क्योंकि अस्पताल की ड्यूटी से पहले तुम्हारी क्लास भी होती थी। तब हमारे पास एक ही कार थी। पर मैंने कभी पता नहीं किया कि तुम उस दिन कैसे पहुंची। तुम्हारी ड्यूटी या क्लास भी कैसे हुई

बस मैं अपनी धुन में था। ''मैं'' बस ''मैं'' मेरे आसपास दुनिया घूमती थी और मैं चाहता था–तुम्हारी दुनिया–तुम्हारा वजूद भी बस मेरे आसपास घूमें। मैं हूँ और यही सर्वोपरि है। पर तुम्हारी ओर से नकार की भावना मुझे और भी अक्खड़ और जिद्दी बनाती रही। मैं तुम्हारी थकान, तुम्हारी टूटन, तुम्हारी व्यस्तता ओर से जिम्मेवारी को नकार कर चाहता कि रात को तुम्हें उसी तरह मरोड़ू–मसलूं और अपनी प्यास मिटाऊँ और तुम बस मेरे पास बिछी रहो–मेरी प्यास बुझाती रहो–तब तक जब तक मैं न थक जाऊं। तुम ने वह भी सहा और शिकायत नहीं की। यद्यपि बच्चे कभी–कभी आकर कहते–पापा। आज मम्मी रो रही थी। मैं चुप्पी लगा जाता। सब जानते हुये भी सब कुछ अंदर घुटक जाता ओर पहले से भी अधिक अहमी और आक्रामक हो उठता।

मैं जानता था तुम्हें बाहर खाना, बाहर जाना, संगीत –सिनेमा–कॉनसर्ट, ड्रामा आदि बहुत पसंद थे–कभी तुम जाने की इच्छा जताती तो मैं झटका देता और तुम्हें उन के हानि–लाभ पर भाषण देने लगता और तुम्हारे परोसे हुये खाने पर नुक्ताचीनी कर के तुम्हें रूआँसा कर देता तुम चिल्लाती नहीं थीं। तुम प्रतिकार नहीं करती थी। तुम किसी बात का विरोध नहीं करती थी पर तुम्हारी यह नकार, यह उपेक्षा मुझे और भी भड़का देते और मैं अपना गुस्सा–दरवाजों को झटाक से खोलने–बंद करने, गुसलखाने में जोर से पानी खुला छोड़ने और बच्चों पर झल्लाने में निकालता था।

एक दिन मेरे एक साथी ने सुझाया–यार! तुम्हें अपने भाई को यहाँ बुला लेना चाहिये–भाभी देख लेगी सारा काम और तुम्हें बाहर जाने के लिए साथी मिल जायेगा। वह दोस्त भी मेरे तरह का दम्भी और पुरूष वर्चस्व का हामी भरने वाला था। मैंने न आव देखा न ताव और भाई के कागज पत्र तैयार करने में लग गया। मैंने तुमसे भी इस बारे में कोई बात नहीं की। जब पता चला था तो तुम बहुत तिलमिलाई थी। इस लिए नहीं कि मैं क्यों बुला रहा हूँ बल्कि इसलिए कि मैंने तुम्हें घर का सदस्य तक नहीं समझा। भाई छह आठ महीनें में यहाँ आ गया। उस के पास कोई कामगार डिग्री नहीं थी, इसलिये मैंने उसे मेक्डॉल्ड में लगवा दिया। हर समय खाने को मीट, पहनने को वहाँ की यूनिफॉर्म–साफ–सुथरा वातावरण–आस पास चहकती गोरी बालायें भाई को तो स्वर्ग मिल गया। शाम को घर आकर हम खूब चहकते, हॅसी–मजाक करते। लड़कियों के लिए श्लील–अश्लील जुमले गढ़ते और उन्हें बोल–बोल कर अपनी हवस पूरी करते। क्या मिलता था हमें मालूम नहीं पर एक तरह का तुम्हे जलाने के लिये यह एक विशेष ढब अवश्य बन गया था। यूँ कह सकता हूँ कि हम ने अपने पाँचों इंद्रियों को बेलगाम छोड़ रखा था ओर वह जिस दिशा में दौड़ना चाहती–दौड़तीं–कुदती–फांदती और हमें एक अलग ही तरह का सकून दे जातीं।

तुम्हारे चेहरे पर गुस्से की तरेर देख कर मन कहीं बहुत गहरे आहलाद से भर जाता। यों मैं एक बहुत ही चुप्पा किस्म का आदमी समझा जाता था पर कोई नहीं जानता था कि मेरे अंदर का एक नरकासुर विराजमान है जिस की आसुरी भूख औरत को सता कर मिटती है। मेरा मन न जाने किस मनोविकार से ग्रस्त था कि अपना सुख पाने के लिये–औरत को कीड़े–मकोड़े की तरह मसल सकता था। जब हमारी छोटी बेटी पैदा हुई भी तो तुम्हारा बड़ा आपरेशन हुआ यानि सिज़ेरियन। तुम नितांत निष्क्रिय और निहत्थी सी हो गई थी। यह एक तरह का तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ था। कुछ देर के लिए–मैं निहायत ही कोमल–हृदय, दयानतदार –सहानभूति पूर्ण डाक्टर बन गया। पर उसी क्षण यह सोच कर कि तुम ने फिर से लड़की पैदा कर दी मेरी सारी सहानभूति जाती रही। और मेरे अंदर का वह पुरूष फुत्कार उठा। यद्यपि साइंस तय कर चुकी है कि लड़का पैदा करने का दायित्व केवल पुरूष के क्रोमोज़ोन तय करते हैं पर सारी दुनिया आजतक इस बात का ठीकरा–औरत के माथे पर फोड़ती आई है तो अब क्यों नहीं। मैं डॉक्टर होते हुए, सब जानते हुए भी इस ठीकरे को जोर–जोर से तुम्हारे माथे पर फोड़ता रहा और तीसरे ही दिन तुम्हें बच्ची के साथ अकेला छोड़ कर बाहर पांच दिनों के लिए किसी मेडिकल केम्प में चला गया। तब तक तो अभी भाई भी नहीं आया था। वह चोट तुम्हे उम्र भर सालती रही। तुम अब तक मेरी सारी अवज्ञायों, सारी उपेक्षायों को समाज में चले आये रीति–रिवाजों, घर में देखे हुए बुजुर्गों के सर मढ़ती रहीं और तुम ने अपनी इस गुलाम–धारणा से समझौता कर लिया था कि औरत को ऐसे ही जीना पड़ेगा और उसे भी जीना है। कहीं अपने अंदर तुम्हारा डॉक्टर होने का ख़िताब अवश्य तुम्हे जीने के लिए थपथपाता रहा होगा– पर यह चोट और उपेक्षा तुम्हें असहनीय थी।

आज जब मैं हथेली में तुम्हारे हाथ को लेकर सहला रहा हूँ तो मुझे लगता है– तुम किसी भी क्षण इस हाथ को झटक कर – छुड़ा लोगी। लेकिन नहीं आज भी तुम चुपचाप अपने हाथों को मेरे हाथों में दिये चुपचाप आँखें बंद किये पड़ी हो। कभी कभी देख रहा हूँ – तुम्हारी बंद आँखों में नमी उतर आती है– तो क्षणांश के लिए मैं भी भीग जाता हूँ। याद

करता हूँ कितनी शिद्दत से तुम्हे चाहा था और पाने की भी हर युक्ति ढूंढी थी पर आज क्या कर रहा हूँ। फिर एकाएक न जाने क्या हो जाता है कि मैं अपने–आप को कोसने लगता हूँ और कहता हूँ क्यों भीग रहा हूँ। और मुझे क्यों कर भीगना चाहिए तुम्हारे लिए। अब जो मैं तुम्हारी हथेली हाथ में लिए बैठा हूँ तो वह भी कहीं घर, बच्चों और दुनिया के सामने एक दिखावा ही है। इसी लिए शायद तुम्हारे शरीर के विज्ञान से जितना मैं पढ़ सकता हूँ। कोई आभार का चिन्ह दिखाई नहीं देता और इससे मेरी झुंझलाहट और बढ़ जाती है। तब मेरी तुम्हारे प्रति उठी करूणा, अपना उम्र भर का पश्चाताप (जो कभी कभी मैं करना चाहता हूँ) न जाने कहाँ तिरोहित हो जाता है। मैं फिर अपने खोल से निकल आता हूँ – वैसा का वैसा – जानवर–नृशंस–नरकासुर कहते हैं मेरी राक्षस योनि है– बहुत पहले किसी न बताया था। आज लगता है किसी ने सच ही कहा था।

मैंने एक हिकारत सदैव तुम्हारी आँखों में देखी है, बच्चों की आँखों में भी उसकी तरेर है और इसलिए मेरे अंदर के सांप की थूथनी फूल–फूल जाती है और फुत्कारती है। जब से तुम इस तरह निष्क्रिय पड़ी हो– मुझे लगता है यह तुम्हारी सायास योजना है –तुम मुझसे बदला ले रही हो। तुम्हारे अंदर का प्रहरी– मेरी सारी हरकतों, इन क्रियाकलापों और दिनचर्या को स्वयं उठ–उठ कर घटते हुए देख रहा है और अट्टहास कर रहा है। मेरे अंदर के भेड़िये को उकसा रहा है। चलो मैं मान लेता हूँ कि उसी नृशंसता के वशीभूत हो कर मैंने कई बार तुम्हारा गला घोटना चाह है। चाहा ही नहीं एक दो बार प्रयत्न भी किया– पर तुम न जाने कैसे मेरा हाथ रखते ही चीख सी पड़ती। तुम्हारे गले से अजीब – अजीब घर्र–घर्र की ऊँची–ऊँची आवाजें निकलने लगतीं और तभी दूसरे कमरे से दोनों बेटियां भागी–भागी आती है।

क्या हुआ पापा ! क्या हुआ।

कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं।

पर यह तो मम्मी की अजीबो गरीब आवाज़ थी पापा। यह आवाज़ तो तब आती है जब मम्मी को कहीं बहुत दर्द होता है।

मैं हक्का–बक्का हो कर उन्हें देखता– और कहता देखो कुछ भी नहीं है। अब बिल्कुल शांत है। जाओ तुम लोग सो जाओ। कोई बात होगी तो मैं बुला लूँगा।

वे चुपचाप पीछे मुड़ कर देखती हुयी अंदर चली जाती और मैं अपनी हथेलियों में अपनी कुंठा को पीसता रह जाता। अपने पर कभी–कभी बहुत ग्लानि भी होती– कि क्या मैं इंसान हूँ। क्या मैं मानव जाति के अंतर्गत आता भी हूँ कि नहीं और इसी उधेड़बुन में कई बार मुझे रातभर नींद भी नहीं आती और मैं अपनी किसी अव्यक्त पीड़ा में जलता रहता। मुझे विश्वास होता चला गया कि वास्तव में– मैं राक्षस योनि का ही हूँ। क्योंकि कहते हैं राक्षस योनि के व्यक्ति दिखने में शांत–स्वभाव–कुशल–मधुर व्यवहार के धनी होते हैं और राक्षस की तरह अपना वार सोच–समझ कर–पूरी तरह साध ा कर चलते हैं। मैं वही तो कर रहा हूँ। वरना डाक्टरों ने ब्रेन ट्यूमर के रिपोर्ट और आपरेशन के बाद बतलाया था कि ट्यूमर अपनी चौथी स्टेज में है और इन का समय अधिक से अधिक तीन चार माह का बाकी है। क्या मैं इतनी भी प्रतीक्षा शान्ति से नहीं कर सकता।

मेरा भाई, मेरा भतीजे, मेरा मौसा और उनका बेटा जिन्हे मैंने बाद में बारी–बारी यहाँ बुला लिया था कहीं दबे–घुटे मेरे तुम्हारे प्रति तेवरों की निंदा करते और साथ ही अपनी हिंदुस्तानी ढंग से–अपनी मेहमान–नवाजी की भी अपेक्षा रखते। तब इस सब के बीच तुम टूट रही थी। बिखर रही थी। आये दिन तुम्हारा स्वास्थ्य गिरने लगा था। तुम सहेलियों से ज्यादा घुलने–मिलने लगी थी और तुम्हारे व्यवहार में एक अवज्ञा–पनपने लगी थी और तुम्हारी वही सदियों पुरानी स्वछंद उड़ने वाली तितली उड़ान–कहीं तीव्र होती दिखायी देने लगी थी। मैं और भी सतर्क और भी कठोर होता चला गया।

एक दिन याद है मुझे–बड़ी कड़ाके की सर्दी थी। बाहर माईनस बारह डिग्री तापमान था। तुम्हारी कार स्टार्ट नहीं हुई। सुबह–सुबह तुम्हे जल्दी थी। तुम हड़बड़ाई हुई अंदर आई और तुमने दूसरी कार की चाबी उठाई और मुझे सुना कर बोली–मैं तुम्हारी बी.एम्. डब्ल्यू. ले जा रही हूँ – मेरी कार स्टार्ट नहीं हो रही.....।

तुम जानती थीं – मैं पैसों की चाहे जैसे बरबादी करता–अलग–अलग ब्रैंड–नेम की कारें खरीदना (सेल पर) कपड़े, सूट, स्वेटर इकट्ठे करने की भी मुझे जैसे बीमारी रही है पर मैंने तुम्हे अपने आमदनी में से कभी–कुछ नहीं दिया। जो दिया बेटियों को दिया।

कार गैराज में पड़ी थी। वह कार मैं आफिस नहीं ले जाता था। वह विशिष्ट पार्टियों के लिए रखी थी–मैं झटके से उठा और तुम्हारे हाथों से चाबी छीनने को झपटा – तुम भौचक्क–हतप्रभ और हैरान खड़ी जैसे वहीं पत्थर हो गई थी। चाबी को घुमा कर तुमने मेरी तरफ इतनी जोर से फैंका कि मेरे होठों से खून बहने लगा और तुम उसी झटके से

बाहर लौट गई।

तुमने टैक्सी बुलाई और चली गई। आज भी सोचता हूँ तो कहीं अपने पुरूषत्व पर गर्व होता है। पर साथ ही एक ग्लानि कि मैंने अपनी नृशंसता की सीमा इतनी बढ़ा ली थी कि तुम्हे भी इस हिंसा तक उतार लाया। तुम मेरे समक्ष खड़े होने की कोशिश कर रही थी। ईंट का जवाब पत्थर से–वाली मुद्रा में। पर मैं वैसा नहीं चाहता था। मैं चाहता था तुम वैसी ही भीगी बिल्ली बनी रहो और मेरे अत्याचार सहती रहो–पलट के कुछ न कहो–कुछ न बोलो।

कहते हैं परम्परा का पालन करना ही धर्म होता है, तो मैंने तो आज तक केवल परम्परा का पालन ही किया है। इसी फलस्वरूप हमारे बीच बात न कर पाने का कुहाँसा फैलता गया था। एक चुप्पी, एक किनारा सा बना रहता था जैसे पानी के आसपास उसे रोकने के लिए झाड़ियों की फैन्स बन गयी हो और बाकी केवल सन्नाटा पसर गया था। हर हृदय में कोई एक कोना उदास एवं सूना होता रहता है, किसी ने न आने से पर न पहचाने जाने पर। इस होने या न होने के बीच का खलाव ही दिलों को सालता रहता है और हम उस खाली जगह पर हाथ रख कर बिसूरते रहते हैं। जब कभी कोई नया आंधी का झौंका आता है तभी उसी क्षण हमारा हाथ सीधा दिल पर जाता है उस खाली जगह को सहलाने के लिए। कोई माने या न माने–कहीं वह वह खाली कोना मेरे अंदर भी था।

तुम्हे ब्रेन ट्यूमर हुआ है, मेरे लिए एक बड़ा झटका था। शायद मुझे होश में लाने के लिए ऊपर वाले की कोई तीरन्दाजी – मैं एक बारगी जड़ हो गया। पर उस दिन जब तुम अर्द्ध–चेतनावस्था में भी मुझे नकार कर अपने भाई के साथ अस्पताल गई, मैं आहत हुआ। सोचा तुम्हारे सोये हुए मष्तिस्क के स्नायूयों में भी मेरी क्रूरता गहरी पैंठ गई है। जब मैं उस धक्के से संभला तो फिर सम्भल कर अपने चौखटै में वापिस आ गया। तुम मुझे नकार कर भी छिटक नहीं सकोगी। तुम निहत्थी हो कर मेरी हर बात मानोगी।

अंदर से मैं आहत था और चाहता था अपनी अब तक की करनियों का प्रायश्चित करना – पर कितने दिन यह विचार रहा। आखिर कलई तो उतर ही जाती है। मैं अपने खोल में जल्दी ही वापिस आ गया। लोकाचार के गणित से मैं एक अच्छा पति बना रहा। किन्तु अंदर ही अंदर मैं तुम्हारे विरूद्ध षड्यंत्र रचता रहा। जब मैं तुम्हारे पास होता तो डॉक्टर की हिदायतों में मनमाने हेर फेर कर लेता। जैसे थैरेपी महीने में चार बार होनी चाहिए तो वह दो बार ही होती। जो दवाई दिन में तीन बार देने वाली होती–वह एक बार या दो बार ही दी जाती– किसी तरह बेटियों की नजर से बचता–बचाता पार कर जाता रहा सब कुछ। आज तुम्हारा हाथ पकड़ कर अपने गुनाहों की माफ़ी मांग रहा हूँ या सारी पुरूष जाति के अहम पर चोट कर रहा हूँ। पर यह बस मैंने तो नहीं चलाया–सदियों से यही चला आया है और पारम्परिक–पाटी पर चलना बुरा नहीं है। आज समय करवट ले रहा है और तुम ने भी कई बार करवट लेने का उपक्रम किया पर तब मैंने अपनी लोमड़ी चालाकी से–तुम्हे दुलराया, आश्वासन दिया, तुम्हें बाँहों में भरा और तुम्हे भी लगा होगा–जैसे युगों से पागल औरत को लगता रहा है –कि सब ठीक है–पति लौट आया है। गाँवों में आज भी औरत पर हाथ इसी परिपाटी के अंतर्गत उठते हैं, बैठते हैं। मैं जानता हूँ और सारी खुदाई जान गई है कि नारी पुरूष से किसी पैमाने से कमतर नहीं है फिर भी वह उपेक्षित और प्रताड़ित ही रही क्यों कि उसने स्वयं होने दिया और सदैव पुरूष की स्वाधीनता ही स्वीकार की। दैव प्रदत्त नारी और पुरूष की भिन्न शारीरिक सीमाएं इसका कारण रही पर दोनों ने ही इसे नहीं पहचाना और एक दूसरे का गलत उपयोग करते रहे।

तुम्हारी खाली हथेली में नमी उतर आई है और मैं हतप्रभ हूँ कि तुम अभी तक जीवित हो।

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों की मूल संवेदना

प्रो. अर्चना जैन
203, वात्सल्य फ्लैट,
वकील वाड़ी, एल.जी.
हॉस्पिटल के पास,
मणीनगर
अहमदाबाद
पिन–380008
(गुज.)
फोनः 079–25462646

गद्य और पद्य दोनों विधाओं में समानाधिकार से लिखने के बावजूद दुष्यंत कुमार मूलतः कवि ही थे। उनके इस कवि के भी तीन पहलू थे : नई कविता, गीत और ग़ज़लें। यह और बात है कि दुष्यंत की ग़ज़लें हिन्दी जगत में इतनी अधिक लोकप्रिय और चर्चित हुईं कि उनकी आकस्मिक मृत्यु के बाद हिन्दी में ग़ज़ल–लेखन की प्रवृति को ग़ज़ल का वेग मिला।

आज तो हिन्दी में ग़ज़ल–लेखकों की बाढ़–सी आ गई है। यह सही है, दुष्यंत–रचित गज़लों–सी कथ्य और शिल्प विषयक बारीकियां आज बहुत कम ग़ज़लों में देखने को मिलती हैं, किन्तु फिर भी हमें इस सच्चाई को स्वीकार करना ही होगा कि अमीर खुसरो और कबीर से निकली हुई भारतेन्दु, प्रसाद और निराला तक चली आती हुई गज़लगोई की सूक्ष्म–कृश धारा को हिन्दी में एक गरजते–लरजते समंदर का रूप देने का श्रेय दुष्यंत को ही है। वे निस्संदेह युग–प्रवर्तक ग़ज़लकार थे।

यह बात नहीं कि दुष्यंत रोमानियत या प्रणयभाव की मखमली अभिव्यक्ति से कतराते थे। यह वैयक्तिक स्वर भी 'साए में धूप' की अनेक ग़ज़लों में देखा जा सकता है, किन्तु वास्तव में यह उनका प्रमुख स्वर नहीं था। वे अपनी ग़ज़लों के ही नहीं, प्रत्युत् अपनी सम्पूर्ण कविता के माध्यम से जनसामान्य की यातनाओं, दुःखों और विवशताओं को ही वाणी देने का प्रयत्न करते हैं।

कविता विषयक उनकी अपनी कुछ अवधारणाएं थीं। आम आदमी के प्रति उनकी सहानुभूति उनके समस्त कृतित्व और विशेषतः उनकी ग़जलों में देखी जा सकती है। 'जलते हुए वन का बसंत' शीर्षक अपनी कृति में कवि ने भूमिका में स्पष्ट करते हुए लिखा है – ''मेरे पास कविताओं के मुखौटे नहीं हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राएं नहीं हैं और अजनबी शब्दों का लिबास नहीं है। मैं कविता को चौंकाने या आतंकित करने के लिए इस्तेमाल नहीं करता। समाज और व्यक्ति के सन्दर्भ में उसका दायित्व इससे बहुत बड़ा है।' 'वह (कविता) राजनीति, सामाजिक, और वैयक्तिक स्तर पर, हर, लड़ाई में मेरे लिए एक भरोसे का हथियार है।'

दुष्यंत अपने प्रारंभिक तीन कविता–संग्रहों के माध्यम से हिन्दी की नई कविता के कवि के रूप में पर्याप्त प्रतिष्ठा अर्जित कर चुके थे, फिर भी उनके हृदय की बैचेनी, अकुलाहट और जिज्ञासा उन्हें अभिव्यक्ति की किसी ज़मीन की तलाश के लिए प्रेरित करती रही, जहाँ पहुँचकर वे समाज के तमाम दुःख–दर्दों और रंजोग़म को आत्मसात् करके अपेक्षाकृत उन्हें अधिक पुरअसर अंदाज़ में व्यक्त कर सकें। अपने इस लक्ष्य के लिए उन्हें नई कविता की भूमि संकीर्ण और अपर्याप्त महसूस हुई। इस सम्बन्ध में दुष्यंत का अपना मत उद्धरणीय है।

वे कहते हैं – ''पिछली पीढ़ी के कवियों के बरअक्स आज की इन कविताओं में यह तय कर पाना भी मुश्किल है कि यह किसकी कविता है और यह कविता है भी कि नहीं। इसीलिए मैंने कहा कि कविता की एकरसता या फिर आधुनिक, युवा, वाम और नई आदि विशेषणों से मंडित आज की कविता के वाग्जाल और सपाट बयानी से उकताकर मैंने उर्दू के इस पुराने और आज़मूदा माध्यम की शरण ली है– जोकि मैं जानता था कि यहाँ भी इश्क और हुस्न से हटकर तकलीफ़ का बखान करना एक मुश्किल और नाजुक काम है और ग़ज़ल की रिवायत से बँधे हुए लोग इस कोशिश पर नाक–भौं जरूर सिकोड़ेंगें।

ग़ज़ल ऐसी काव्य–विधा है जो पीड़ा, फिर वह वैयक्तिक हो या सामाजिक, को प्रभावी ढंग से व्यक्त करने का एक अत्यंत उपयुक्त एवं सशक्त माध्यम है। बकौल जाँ निसार अख़्तर ग़ज़लगोई एक ऐसा फ़न है जिसके दो मिसरों के शेर में शायर अपने दिल में जलती हुई आग भरकर उसे पुरअसर बना देता है–

हमसे पूछो कि गज़ल क्या है, ग़ज़ल का फ़न क्या,
चंद लफ़्जों में कोई आग छुपा दी जाए।

दुष्यंत तो एक ऐसा अदीब था जो देश के करोड़ों अभावग्रस्त और ग़मज़दा लोगों का प्रतिनिधित्व कर रहा था। उसकी ग़ज़लें भला पुरअसर क्यों न होतीं ?

मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूं,
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।

दुष्यंत की कथनी और करनी में फर्क नहीं था। वह सस्ती और बाज़ारू टाइप की लोकप्रियता से कोसों दूर था। जिन दिनों हिन्दी में छंदमुक्त नई कविता और उसके समर्थकों का बोलबाला था, उर्दू शायरी में भी अधिकाशतः इश्को हुस्न, शमा–परवाना, गुलो बुलबुल और जामोमीना की रिवायत में ही नए–पुराने शायर मुब्तिका थे ऐसे समय में दुष्यंत ने नई

कविता के अग्रात्म, दुर्बोध, जटिल और उबाऊ डिक्शन को छोड़कर ग़ज़ल–विधा को अपनाया और उसमें भी सामाजिक उत्पीड़न और राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को बड़ी ही ज़िंदादिली और साफ़गोई के साथ व्यक्त करने का क्रांतिकारी क़दम उठाया। दुष्यंत की ग़ज़लों में जहां एक और उसकी साफ़गोई दिखाई देती है वहीं दूसरी ओर उसके हृदय में छिपे आँसू भी दिख पड़ते हैं। दुष्यंत की सोच का निराला ढंग और शेर की अदायगी को तेवर तो देखिए। उसे न ज़िन्दगी की ज़रूरत है न किसी खुदा की गरज़।

सीने में ज़िन्दगी के अलामात हैं अभी,
गो ज़िन्दगी की कोई ज़रूरत नहीं रही।
हमने तमाम उम्र अकेले सफ़र किया,
हम पर किसी खुदा की इनायत नहीं रही।

अपनी असल पीड़ा को अधिक से अधिक लोगों तक आसानी से पहुँचाने के लिए दुष्यंत ने ग़ज़ल के क्षेत्र को अपनाया। वे स्वयं लिखते हैं – ''मैंने अपनी तकलीफ़ को... .....उस शहीद तकलीफ़ को ज़्यादा से ज़्यादा सच्चाई और समग्रता के साथ ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए ग़ज़ल कही है।'' ''ज़िंदगी में कभी–कभी ऐसा दौर आता है, जब तकलीफ़ गुनगुनाहट के रास्ते बाहर आना चाहती है। उस दौर में फँस कर ग़मे जानां और ग़मे दौरां तक एक हो जाते हैं। ये ग़ज़लें दरअसल ऐसे ही एक दौर की देन हैं।''

न तो दुष्यंत की संवेदना उधार ली हुई थी, न उसकी सोच उथली या सतही थी और न ही दुष्यंत की पीड़ा कृत्रिम किस्म की ओढ़ी हुई पीड़ा थी। दुष्यंत की संवेदना में इसीलिए भुक्तभोगी हृदय की सच्चाई और पीड़ा में मर्म को स्पर्श करने की शक्ति थी। वैयक्तिक और सामाजिक पीड़ा की दोहरी संवेदना के कारण ही संभवतः दुष्यंत की ग़ज़लें मर्मस्पर्शी और फलस्वरूप लोकप्रिय हो सकी हैं। जहां तक पीड़ा और वेदना की प्रखर अनुभूति का प्रश्न है, दुष्यंत की तुलना यदि किसी ग़ज़लकार से हो सकती है तो वे हैं मिर्ज़ा असदुल्लाखाँ ग़ालिब। इसके बावजूद दोनों की पीड़ा में संवेदना के स्तर पर एक अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। जहाँ ग़ालिब अपने समकालीन समानधर्मा रचनाकारों से त्रस्त होकर कहीं दूर चले जाने की बात कहते हैं, वहीं दुष्यंत की अनुभूति में अपेक्षाकृत अधिक प्रखरता और अभिव्यक्ति में अधिक व्यंजना है – ग़ालिब कहते हैं –

रहिए अब ऐसी जगह चल कर जहाँ कोई न हो,
हम सुख़न कोई न हो और हमजुबाँ कोई न हो।

दूसरी ओर दुष्यंत कहते हैं –

यहाँ दरख़्तों के साए में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्रभर के लिए।

दुष्यंत कुमार की इस स्वीकारोक्ति में यक़ीनन सचाई है कि: ''भारतीय कवियों में सबसे प्रखर अनुभूति के कवि मिर्ज़ा ग़ालिब ने अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए ग़ज़ल का माध्यम ही क्यों चुना ? और अगर ग़ज़ल के माध्यम से ग़ालिब अपनी निजी तकलीफ़ को इतना सार्वजनिक बना सकते हैं तो मेरी दुहरी तकलीफ (जो व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी) इस माध्यम के सहारे एक अपेक्षाकृत व्यापक पाठक वर्ग तक क्यों नहीं पहुंच सकती ?''

दुष्यंत हिन्दी की तथोक्त नई कविता और विशेषतः उसमें आधुनिकता की दुहाई देने वाले नारेबाज कवियों से बुरी तरह झल्ला उठे थे। दुष्यंत जनवाद के हामी थे, वे क्रांति के पक्षधर भी थे किन्तु वे इस सच्चाई से भी भलीभाँति परिचित थे कि क्रांति दलबन्दियों, खेमेबाजियों और खोखले नारों से नहीं आती। उसके लिए ज़रूरी चीज़ है एहसास की वह गर्म शिद्दत जिसमें फौलाद भी गल जाता है। स्वयं दुष्यंत के शब्दों में, ''हां, मैंने ग़ज़ल अपने चारों ओर बुनी जा रही है कविता की एकरसता तोड़ने के लिए भी कहना शुरू किया।. ..... कविता में आधुनिकता का छद्म कविता को बराबर पाठकों से दूर करता गया है। कविता और पाठक के बीच इतना फ़ासला कभी नहीं था, जितना आज है। इससे ज़्यादा दुःखद बात यह है कि कविता शनैः शनैः अपनी पहचान और कवि अपनी शख़्सियत खोता गया है।..... . जो कविता लोगों तक पहुंचती नहीं, उनके गले नहीं उतरती वह किसी भी क्रांति की संवाहिका कैसे हो सकती हैं ?''

दुष्यंत से पूर्व अपनी तमाम कथ्यगत और शिल्पगत विशेषताओं के बावजूद उर्दू ग़ज़ल (चाहे वह हिन्दुस्तानी हो या पाकिस्तानी) वैयक्तिकता के गहरे दलदल में फँसी रही। यही कारण है कि सामाजिक चेतना से अनुप्राणित दुष्यंत की ग़ज़लों को जहाँ नई पीढ़ी के उर्दू साहित्यकारों और शायरों ने यह कहकर बहिष्कृत करने की नाकाम कोशिश भी की कि ये 'ग़ज़ल के शेर' नहीं हैं और दर हक़ीकत दुष्यंत से पहले कथ्य में सामाजिक चेतना की ऐसी तीखी और तल्ख़ अभिव्यक्ति उर्दू ग़ज़लों में देखी भी नहीं गई। हर सिम्त तगज़्ज़ुल का ही बाज़ार गर्म रहा। ऐसे में ज़बान की सलामत और जज़्बात की शिद्दत लेकर ग़ज़लगोई के मैदान में उतरने वाले दुष्यंत का लोकप्रिय हो जाना स्वाभाविक भी था। दुष्यंतकुमार लिखते हैं – ''कथ्य के स्तर पर इनमें मौजूदा हालात की बात कही गई है। जो दृश्य सामने वह दृश्य जो सामने होना चाहिए उसकी

ज़रूरत, समाज का जूझता और टूटता हुआ रूप, राजनीति और राजनीतिज्ञों का मुल्क और समाज के साथ सुलूक, इन्सान यानी आवाम की ज़िन्दगी, जरूरतें और उसके ख़तरे. .....इन सबकों मैंने इन ग़ज़लों में बांधा है और इन संजीदा और भारी भरकम मुद्दों को सहज से सहज अभिव्यक्ति और सादी से सादी भाषा में बयान करने की कोशिश की है।''

दुष्यंत की ग़ज़लों के सम्बन्ध में डॉ.धर्मवीर भारती की इस टिप्पणी में कटुता भले ही हो किन्तु सच्चाई और वास्तविकता भी है। वे लिखते हैं–''आखिर क्या था उन ग़ज़लों में जो इस तरह इतनी गहराई में झकझोर गया।.....सबसे बड़ी बात यह थी कि वे एक ऐसे आदमी की प्रामाणिक पीड़ाभरी आवाज़ थी, जो इस मुल्क को, अपनी इस दुनिया को बेहद प्यार करता रहा है। जो बेहतर सपने और उजले भविष्य के प्रति अखण्ड आस्थावान रहा है। भविष्य के सपनों में जो जी–जान से जिया है, जिसने देखा है बेबसी और लाचारी से एक–एक कर उन सपनों को बिखरते हुए और उसका दर्द पूरी शिद्दत से महसूस करते हुए।.....न तो उसने छद्म आशावाद में पलायन किया और न एक बेईमान किस्म की झूठी शब्दाडम्बरमयी आक्रामकता में। एक सच्ची और तीखी अकेली छूटी हुई रचना, झूठे शब्दजाल के विराट काव्याडंबर को कैसे पलभर में नकली और जाली साबित कर अपने को प्रतिष्ठित कर लेती है, इसका प्रमाण दुष्यंत की ग़ज़लें हैं।''

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रही सियासी साज़िशों, वैचारिक अन्तर्विरोधी और सामाजिक क्रूर विषमताओं को दुष्यंत शब्दाडंबरों की मोटी चादर चीरकर भी देखता है और उसके भीतर छिपे भोंडेपन और मानवीय शोषण के हथकण्डों को निर्ममता से उजागर करता है। दुष्यंत की ग़ज़लों के शेर अर्थात् दर्द की पहाड़ी चट्टानों के भीतर ही भीतर बहता हुआ आग का सैलाब, व्यवस्था विरोध में ज्वालामुखी के विस्फोट की मानिन्द जलती हुई मशाल। चन्द अशआर उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हैं–

कभी कश्ती, कभी बत्तख, कभी जल,
सियासत के कई चोले हुए हैं।

दुकानदार तो मेले में लूट गए यारों,
तमाशबीन दुकानें लगाके बैठ गए।

रौनके जन्नत ज़रा भी मुझको रास आई नहीं,
मैं जहन्नुम में बहुत खुश था मेरे परवरदिगार।

वस्तुतः दुष्यंतकुमार एक ऐसे संवेदनशील कवि किंवा ग़ज़लकार थे जिनके हृदय में शोषण और अन्याय के विरूद्ध निरंतर एक जागरूकता बनी रही जो उन्हें हर घड़ी हर लम्हा बेचैन करती रही। युगबोध के प्रति निरंतर सजग दुष्यंत की ग़ज़लें हमारे समकालीन यथार्थ की दस्तावेज हैं। प्रतीकों की सहायता से दुष्यंत ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश में जीने वाले आम आदमी के स्वप्नभंग एवं मोहभंग को मुखर किया है।

दुष्यंत व्यक्ति के रूप में एक जनसाधारण थे और इसीलिए उनकी ग़ज़लें आम आदमी की वेदनाओं एवं संवेदनाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। दुष्यंत के ही शब्दों में, ''मैं साधारण आदमी हूं, इतिहास और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में, साधारण आदमी की, पीड़ा, उत्तेजना, दबाव, अभाव और उसके सम्बन्धों, उलझनों को जीता और व्यक्त करता हूं।''

दुष्यंत की ग़ज़लें उस आवाम के लिए लिखी गई थीं जिनके लिए वह ताज़िन्दगी चिंतित और बेक़रार रहे। इस दृष्टि से हम उन्हें प्रतिबद्ध कवि भी कह सकते हैं। उनकी ग़ज़लों में न तो तथाकथित पंडितों के जैसा बड़बोलापन है और न ही अर्थहीन शब्दाडंबर। जीवन की जटिलताओं को सरल–सुबोध भाषा में व्यक्त करने के लिए उन्होंने ग़ज़लगोई के फ़न को स्वीकार किया। वे लिखते हैं – '' मैं प्रतिबद्ध कवि हूं.....यह प्रतिबद्धता किसी पार्टी से नहीं, आज के मनुष्य से है और मैं जिस आदमी के लिए लिखता हूं, यह भी चाहता हूं कि वह आदमी उसे पढ़े और समझे।'' कविवर श्री धनंजयसिंह के शब्दों में –

उसने लिक्खी नहीं थी वाह–वाही की ग़ज़लें,
दर्द की खंदकों से उसका हर अशआर उठा।
वक़्त की धड़कनों में रक्त जिसका बहता था,
एक स्वरकार उठा आग का सितार उठा।

नारी के आसपास

नवल जायसवाल
प्रेमन,
बी 201 सर्वधर्म
कोलार रोड,
भोपाल 462042
फोन : 2493840

नारी सृष्टि का प्रतीक है जो पृथ्वी के उद्विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं अवधारणों का बखान करता है। आग का गोला थी, जलमग्न हुई और धरती के पावन स्वरूप, मिट्टी का अस्तित्व प्रकाश में आया।

नये जीव जलचरों की विभिन्न प्रजातियों की श्रृंखला ने अपने अस्तित्व की नींव रखी और कालान्तर में जाकर यही प्रजाति मानव के स्वरूप को संवारने में सफल हुई।

महादेव ने विष्णु की रचना की, विष्णु ने ब्रहा की उत्पत्ति का श्रेय पाया और अपने वरिष्ठों की आज्ञा को शिरोधार्य कर सृष्टि की रचना में संलग्न हो गये। बिना नारी के मानव जैसे क्रीचर को निरन्तरता नहीं दी जा सकती थी अतः उन्होंने पुरूष के साथ ही नारी को भी अस्तित्व में लाने का उपक्रम किया।

समस्त विश्लेषण का यही सार है कि समस्त दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो नारी और पुरूष एक दूसरे के पूरक हैं। अर्धनारीश्वर इस तथ्य का प्रतीक है जो एक शाश्वत मूल्य है। मनुष्य पुरूष के रूप में आ तो गया और उसे इस बात का विश्वास हो गया कि नारी अपने स्वयं के बल पर निरन्तरता नहीं पा सकती है। इसी अहं से आरम्भ होता है नारी का शोषण और पुरूष का आतंक। उसने आते–आते नारी को अनेकों रूपों में देखा, परखा और सदुपयोग–दुरूपयोग सब कर डाला। नारी शक्ति को प्रश्रय देने का अर्थ यही मान लिया गया कि उसे कभी स्वतंत्र करना ही नहीं है। शारीरिक आधिपत्य की चर्चा तो छोड़ ही दें तो अपनी मातृभूमि के साथ भी खिलवाड़ करना आरम्भ कर दिया। भारत की धरती, एक विश्वास, आस्था और संस्कारों को आधार मान कर सामाजिक, आर्थिक संरचना में तल्लीन थी, को दूसरों के हवाले करने का सिलसिला आरम्भ हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि इस्लाम और ईसायत के पांव भारत में जम गये। देश स्वतंत्र तो हुआ किन्तु आधार धर्म का रहा। भारतीय संस्कृति को धर्म का नाम दे दिया गया। मैं आज इस बात को स्वीकार करने को तैयार हूँ कि आज इसकी अनिवार्य प्रासंगिकता नहीं है किन्तु स्मृति–पटल अपना काम तो करेगा। कभी इस बात की कल्पना अवश्य करिए कि राजस्थान में सैकड़ों नारियाँ अपने आप को अग्नि के हवाले कर दिया करती थीं, प्रसंग है गांधारी जैसी, नारियाँ उसी प्रदेश से आया करती थी, जहाँ आज इस्लाम नाम की संस्कृति पनप रही है। महात्मा बुद्ध की प्रतिमाओं को तोड़े जाने का कुकृत्य बहुत पुराना नहीं है। मेरा यह मानना है कि पूरे विश्व में धर्म नाम की कोई वस्तु नहीं थी, थी तो केवल एक आराधना अपने–अपने ईष्ट के वलय में प्रवेश कर जन्म–मरण से मुक्ति पा जाने की लालसा अर्थात् प्रजनन क्रिया को सीमित कर देने की एक पहल।

यदि यह क्रिया सफल हो जाती तो इस जनसंख्या वाले प्रदूषण से हम बच जाते और भ्रूण हत्या की हमारी मानसिकता पल्लवित नहीं होती।

ये सारे तथ्य और कोई नारी शक्ति अर्थात् सृष्टि की भलाई के लिए, उसके हित में प्रस्तुत किए जाने वाले उपाय थे किन्तु हमारे अहं ने शक्ति को पहचानने की आवश्यकता के विवेक को ही नष्ट कर दिया। अपना आधिपत्य बना रहे, नारी अपना विकास मनुष्य की सीमा में रह कर करें और भारत पर आक्रमण करने वालों की कुदृष्टि भारतीय नारी के सौन्दर्य पर न पड़े, इसी विडम्बना ने उसे परदे के अन्दर ढकेल दिया। उस पर किए जा रहे उत्पीड़न ने ही झांसी की रानी, अवन्ती बाई, दुर्गावती आदि को अपने बन्धनों को तोड़कर, कुचक्रों से लड़ने के लिए, समाज में आगे आना पड़ा। अनेकों उदारहण हैं, अनेकों घटनाएँ हैं, अनेकों कहानियाँ हैं।

बीसवीं सदी के आते–आते परदे का पालन कम होने लगा। नारी ने अपना स्थान पुनः प्राप्त करने का संकल्प दुहराया। उसने कला और संस्कृति को सबसे पहले अपना कार्य क्षेत्र माना। समाज सुधार और राजनीति में आने के लिए उसे थोड़ा समय लगा। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई इस संग्राम का आगाज कर चुकी थीं। अंग्रेजों को बाहर कर देने का समय आ गया था और समाज के हर वर्ग ने इस आंदोलन को अपना लिया था। सारे देश में आजादी पाने की लालसा और अधिकार ने सर्वोच्च स्थान पा लिया था।

नारी वर्ग ने अपनी अनेक शाखाओं का विस्तार किया, अपने उत्कर्ष के नये माप–दण्ड आरम्भ किए और समाज में अपनी बढ़त के ग्राफ को ऊँचा किया। उसने हर क्षेत्र में पुरूषों से कंधा ही नहीं मिलाया बल्कि उससे आगे निकल जाने को एक आधुनिक चुनौती भी मान ली। सर्व विदित है चुनौती, लक्ष्य पाने का एक माध्यम भी है। हमारे उत्कर्ष का सबसे बड़ा, महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक कार्य था अन्तरिक्ष में

जाना और भारतीय नारी ने इसे स्वीकारा और सम्पादित भी किया किन्तु नियति अपना खेल खेल गई।

समाज में कसैलापन सदैव साथ आता रहा है। पुरूष समाज ने अपने आप को नारी समाज की प्रगति के पीछे लगा दिया और उससे कुछ घृणित कार्य भी करना डाले। उनकी सूची पर फिर कभी चर्चा करना चाहूँगा। मैं एक कलाकार हूँ अतः नारी जाति के समस्त विकास और पवित्रता का पक्षधर ही रहना चाहूँगा। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि नारी ने नारी को ही प्रताड़ित किया है किन्तु ये सब उँगलियों पर गिने जाने वाले उदाहरण होंगे। हमारे लोकतंत्र ने इस ओर ध्यान तो दिया है किन्तु वह अपर्याप्त हैं। सच कहा जाय तो उसने लोकतांत्रिक पद्धति को चकनाचूर कर दिया और अमानवीय विसंगतियाँ पैदा कर दीं। नारी सुरक्षा आज ऊँट के मुँह में ज़ीरे के समान है। प्रत्येक मानव के आस–पास मां–बहन–बेटी–पत्नी–मित्र आदि भूमिकाएँ बिखरी पड़ी हैं किन्तु वह अपनी लोभी प्रवृत्ति की पूर्ति के लिए सब भूल जाता है और कलयुग की परिणिति, अपनी स्वयं की अबोध, बच्ची के साथ कुकर्म करने से भी नहीं चूकता है। गाथा यहीं आकर नहीं खत्म होती है आगे बढ़ जाती है, इसे रोकने के लिए समर्थ और सार्थक प्रयास करने होंगे, प्रशासन में बैठे लोगों के अलावा अन्य समुदायों को भी करना होगा।

पुलिस और प्रशासन की भूमिका संदिग्ध होती जा रही है। आज हर आदमी थाना जाने से डरता है। न्यायपालिका भी स्वयं के कटघरे में आती जा रही है। न्याय समाज से दूर होता जा रहा है। शीर्ष में बैठे लोगों ने अपने आप को बड़े–बड़े घोटालों से बचा रखा है। हम नहीं जानते वे घपला कैसे करते हैं और किस प्रकार बच जाते हैं। यह ऐसा समीकरण है जो नारी की अस्मिता से दूर नहीं है। जन प्रतिनिधियों का उत्तरदायित्व है कि वे इन अनियमितताओं पर स्थायी अंकुश लगायें तभी जननि को जनने दो और जननि को जीने दो जैसी कविता अपनी फुलवारी बचा सकेगी। नारी सब जगह अपने आप को श्रेष्ठ तो साबित कर सकती है किन्तु अपने शारीरिक गठन का क्या करे। अपने लालित्य के कारण वह कमज़ोर हो जाती– ऐसे समय में मनुष्य अपने कुचक्रों के सहारे जीत जाता है। वह ऐसे दांव चलता है कि नारी उसके जाल में फंस जाती है और विवश होकर आत्म समर्पण कर ही देती है।

मनुष्य नामक प्रजाति को अपने आप में बदलाव लाना होगा और इसकी सम्भावना क्षीण ही दिखाई देती है। वह अपने स्वार्थ के लिए अश्वत्थामा बन जाता है और अपने कलुषित ब्रहास्त्र यानि सोनोग्राफी के माध्यम से भ्रूण हत्या कर डालता है। ऐसी परिस्थिति में नारी न तो जननि बन पाती है और न ही माता, उसे मिलती है एक सूनी और सूखी कोख। वह अपने मातृत्व के अधिकार से वंचित हो जाती है। निःपुती होने का कलंक उसके माथे पर जड़ दिया जाता है। सभी जानते हैं इस अपराध के पीछे किनका हाथ होता है। रही बात धनाढ्य बनने की तो इस लालच ने पुरूष ही नहीं नारी को भी पतिता बनाने से नहीं बख़्शा है, उसे भी शिकार होना पड़ा, राजनीति की तो बात ही नहीं करिए उस जगह कुछ नारियों ने तो, सीमा तक लांघ डाली। मीडिया और फिल्मों ने भी नारी को विकृत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। टी.वी. के माध्यम ने तो चौके–चूल्हे तक अतिक्रमण कर डाला है। सेन्सरशिप नाम की वस्तु अधिनियमों में दूर दूर तक दृष्टिगोचर नहीं होती है। सरकारें भी इस सोच को न जाने कहाँ ले जाकर रख देंगी। वही पलाश के तीन पान।

कोयला कितना अच्छा होता था/ घिसने के काम आता था/हमने सब उसे/अपने जीवन से हटाकर/संग्रहालय में रख दिया है.....

किन्तु यह सब अन्तिम नहीं है, हर रात के बाद सबेरा है, फिज़ाँ बदली है, और बदलेगी, मैं वही सब पाने का सपना देख रहा हूँ.....

उस नारी के एक रूप को/प्रस्तर की मूर्ति बना/विधवा के कपड़े पहना दिए/जुर्रत तो देखिए/हाथ में तराजू तो दी /लेकिन/आँखों पर काली पट्टी बांध दी/न्याय नेपथ्य में चला गया/मैं इस नारी में अग्नि देखना चाहता हूँ/आँखों की पट्टी खोलना चाहता हूँ/उसके हाथ की तराजू को हिलाना चाहता हूँ।

मैं दृश्य विधा से आने वाला कलाकार हूँ। जननि के आसपास रह कर कुछ व्यक्त करने का प्रयास करता रहा हूँ– उनसे कुछ शब्द बच जाते हैं उन्हें संग्रहित करने का नाम नवल है। इसी आशय के साथ कि हम जागें, आप जागें, समस्त समाज जागे और तब तक जागते रहें जब तक..... .....यही तो आपको सोचना है और करना है। मैं अपने बारे में इतना बता दूँ कि मैं इस आशय का पालन करता हूँ जो अभी अभी आपने सुना–पढ़ा। आइये जननि को जीने दें।

सादर.....।

भूमि अधिग्रहण की सार्थकता

वर्तमान की माया सभी लाचार है परवश हैं। लाचारी का आलम यूं है कि कोई चाहकर भी अपनी मर्जी का काम कर नहीं पा रहा है जबकि यह दौर व्यक्तिगत स्वतंत्रता का परम भक्त है। प्रत्येक जिह्वा पर इस स्वतंत्रता के नारे बुलंद हैं। और परवशता की तूती ऐसी बोल रही है कि जैसी नीतियां बने उनके अनुसार चला जाय, बगैर चूं चपड़ के।

विज्ञान का एकाधिकार पूरे सिस्टम को अपने अनुसार चला रहा है। इसके बेजा, जरूरी कब्जे का कोई विषय नहीं है। पुराने हुनर आज तक अपनी उपयोगिता बनाये रखे हैं और विज्ञान के नित नये आविष्कार दस पांच साल में बदलाव के साथ उनसे जुड़े रोजगार वालों को भी समय के साथ दौड़ा रहे हैं। विज्ञान की चकाचौंध से सारा संसार चुंधियाया हुआ है। मजबूरी की मौज में हर कोई घूमना/झूलना चाहता है। बगैर आगा पीछे सोचे इस यज्ञ में स्वयं को समिधा बनाकर आहुति डाल रहे हैं।

विज्ञान की यानी आधुनिक जीवन शैली की आपूर्ति के लिए प्रकृति का दोहन भी उसी तेजी से हो रहा है खदानों से अयस्क निकाले जो रहे हैं उनमें से कुछ उपयोग किये जा रहे हैं तो कुछ भविष्य के लिए धनी देशों द्वारा डम्प किये जा रहे हैं। झाड़–पेड़, नदी–नाले, पहाड़–मैदान, तालाब–कुएँ कुछ भी तो नहीं बचा है इस 'विकास' (विनाश) से। इस भयावह स्थिति में सांसारिक मनोरंजन के साधन यूं विकसित कर दिये हैं कि लोग यह मानने लगे हैं कि यही जीवन है।

इस कदर फैले हुए इस जुमले के चलते पक्ष–विपक्ष के अपने तर्क कुतर्क स्थापित हो गये हैं। वर्तमान की क्रांति सबके लिए मूलभूत, रोटी कपड़ा और मकान नहीं मिला है परन्तु, मोबाइल केमरा, संगीत, फिल्में, वाई–फाई, बोतलबंद पानी, स्नेक्स आदि का जुगाड़ हो ही गया है। इन आभासी खुशियों के चलते जीवन के मायने बदल गये हैं। खेती किसानी, बढ़ईगिरी, लोहारी, राजमिस्त्री आदि ओछे काम घोषित हो गये हैं अघोषित रूप से। इन बदले हए मायनों में तारतम्य कैसे स्थापित हो, बड़ा सा प्रश्न चिन्ह मुंह बाये खड़ा है।

औद्योगिकीकरण और शहरी करण ने जमीन की आवश्यकता को सुरसा के मुंह की तरह अपना रूप धर लिया है। इनकी आपूर्ति के लिए वनों की कटाई, पहाड़ो की छंटाई, तालाबों की पटाई, खेतों की पटाई का काम जोरों से चल रहा है। बड़े बांधों ने हजारों हेक्टेयर जमीन लील ली है तो लोगों ने नदियों के किनारों तक मकान बना लिये। जहां मल्टीस्टोरी के निर्माण से आकाश छूने पर मजबूर हैं तो रईसों और रसूखदारों ने फार्म हाउस और पैसों के इनमें इनवेस्टमेंट के लिए जमीनों का कब्जा रखा है। वर्तमान के सम्बन्ध में मेरा हमेशा का विचार कि बीमारी की जगह लक्षण का उपचार बड़ी कमजोरी है। भले ही इस कमजोरी के पीछे अफसर नेता ठेकेदार की मजबूरी हो, देखें जरा।

शहरीकरण के चलते शहर का लगभग एक तिहाई भाग सड़क में खप जाता है। तो हम ग्राम विकास की बातें क्यों नहीं करते जहां कम आबादी पैदल और संकरी गलियों में भी चल सकती है। न तो पेट्रोल, डीजल की खपत होगी न ही जमीन का विनाश।

एक व्यक्ति के पास सौ–पचास मकान हैं। सैकड़ो प्लॉट हैं वो किस काम के। सरकार ऐसा सिस्टम प्राथमिकता से क्यों नहीं बनाती कि कोई भी 2000 फीट से ज्यादा जगह न खरीद सके। खाली पड़े प्लॉट और मकान प्रकृति के विकृत दोहन के परिचायक नहीं है ?

शहरो में एक बाथरूम के बराबर जगह में परिवार रहते हैं। जितनी जगह में एक कार रखी जाती है उतनी जगह में परिवार रहते है। सरकार कार, जीप आदि प्रायवेट वाहनों का उत्पादन क्यों करती है ? देश में दस लाख कारें है तो प्रति कार 50 स्केयर फीट के हिसाब से 5 करोड़ स्केयर फीट जगह अपने रखने के लिए उपयोग करती हैं। उसके हजार गुना उनके चलने, आगे–पीछे करने, दायें–बायें प्रवेश करने आदि में, कार गैरेज, कार शोरूम, कार फैक्ट्री आदि में जगह लगती है। किसी कार वाले से यह चर्चा करें वह आपको तुरंत पागल घोषित कर देगा। लाखों करोड़ों के रोजगार की दुहाई देकर अपनी सुविधा पर कुदृष्टि डालने की तुरंत ही सजा देगा।

सार्वजनिक परिवहन सिस्टम को क्यों नहीं मजबूत करते हैं ? कुल मिलाकर भूमि के उपयोग पर कड़ाई से नजर रखी जाये और उनकी सही ढंग से उपयोगिता बनी रहे यह एजेण्डा होना चाहिए, न कि सरकार (चलाने वाले नेता, अफसर, ठेकेदार) एक ओर जनता की हितैषी बन अस्पताल और मुफ्त दवा का प्रोपेगेण्डा रचे और दूसरी और शराब, गुटका, गुडाखु, गांजा बेचने/बनाने का लाइसेन्स भी जारी करें। यह तो वह पहलू है जहां ''तिकड़ी'' अपनी पेटी भरने के लिए अंधे होने का नाटक कर रही है, यदि हम बीमारी के बजाय लक्षणों का इलाज करने पर मजबूर हैं तब क्या करें ?

उद्योग लगाना मजबूरी है, सड़क बनाना मजबूरी है शहर बसाना मजबूरी है। अस्पताल, स्कूल, कालेज, काम्पलेक्स, मल्टीफ्लेक्स, फ्लैट आदि की मजबूरी के चलते क्या किया जाय ?

बड़े बांध और पहाड़ों का कटाव जलवायु परिवर्तन का कारण बना गया है, वनों का विनाश तो पहले ही अवर्षा से सामना करवा चुका है। धरती के भीतर का पानी और खनिज तेल निकालना भूकंप का कारण हो चुका है। सबकुछ जानते हुए भी इस आग के कुंए में कूदकर रोमांचित होना मजबूरी है। वक्त की इस मांग के चलते वैचारिक परिवर्तन भी जरूरी हो गया है। हम एक ओर पुरानी जीवन शैली और तकनीक के पुरोधा बने रहना चाहते हैं तो दूसरी ओर वैज्ञानिक ''मजा'' मारने के लिए मरे जा रहे हैं। क्या हो ऐसा जिससे संतुलन बना रहे ?

वर्तमान में सबसे बड़ा विरोध भूमि अधिग्रहण का है। न तो किसी को बड़े बांधों से परहेज है न ही उद्योगों से, चौड़ी चिकनी सड़क सपना हैं तो 24 घण्टे बिजली और बिजली से चलने वाले उपकरणों की दरकार है। जमीन के बिना ये कैसे संभव हो ? न तो आपके बच्चों के पढ़ने के लिए बड़े कैम्पस वाला स्कूल/कालेज बन पायेगा जहां हरियाली क्रिकेट/फुटबाल के मैदान भी हों, और न ही आपके घर से निकले कूड़े का डम्प स्टेशन बन पायेगा।

जंगल का कटाव अब काफी कम हो गया है क्योंकि वे बचे ही कम हैं। पहाड़ों का दोहन वहां रहने और छोटे बांधों के निर्माण के लिए हो रहा है। नदियां नालों में बदल गई हैं। किनारों तक बने मकान अपना कचरा डाल इन नाले रूपी नदियों को नाली में बदलने की कोशिश में लगे हैं। शहरों के विस्तारीकरण के चलते, शहरों से लगे गांव अब उस शहर के मुहल्ले बनते जा रहे हैं। इस स्थिति में दो ही रास्ते बचते हैं या तो हम पुरानी जीवन शैली अपना लें और इस विकास का पूर्ण रूप से बहिष्कार करें या फिर बीच का रास्ता निकाल कर परिस्थिति का योजनाबद्ध ढंग से सामना करें। समझौते की इस तस्वीर के दृश्य एकदम स्पष्ट हैं। नदियों का संरक्षण हो। दोनों किनारों से 100 मीटर की दूरी तक खुली जगह होनी चाहिए जहां वृक्षारोपण किया जाय। गंदे पानी, कचरे के दोहन के संयंत्र हों। कार जीप आदि का उत्पादन सीमित हो और टैक्स उनके मूल्य का कई गुना हो। किसी की मौज मस्ती के लिए अन्य लोग कम से कम अपना पैसा तो न लगायें।

इस भूमि अधिग्रहण में मुख्य मुद्दा है किसानों की जमीन का अधिग्रहण! हम किसानों कें हितैषी (सच्चे) आंख मूंदकर इस अधिग्रहण का विरोध कर रहे हैं। उनका कहना है कि खेत न हों तो भविष्य में अनाज की पूर्ति किस तरह होगी ? हितैषी (सच्चे) वर्तमान की आवश्यकताओं को समझते हुए ये कैसा राग आलाप रहे हैं ? वे खेती किसानी को आधुनिक बनाने की बात नहीं करते, खेती को उद्योग का दर्जा देने की बातें नहीं करते। वर्षा आधारित खेती को नहर आधारित खेती में बदलने की वकालत नहीं करते, छोटे छोटे खेतों को बड़े चक में बदलने की सोच नहीं बनाते, उत्पादित अनाज के भंडारण की अच्छी व्यवस्था की बात नहीं करते। खेती में मशीनीकरण के हिमायती नहीं बनते। ये तमाम मुद्दे उन्हें आंदोलित नहीं करते हैं। सदियों से इन्हीं गरीब किसानों की छाती पर पैर रखकर आगे बढ़ने वाला शोषक वर्ग अब रूप बदलकर 'बौद्धिक जगत' बनकर आ गया है। यदि इन हितैषियों ने खेती के आधुनिकीकरण पर तीस चालीस साल पहले काम किया होता तो आज इस तरह युद्ध नहीं लड़ना पड़ता। मात्र खाद और कीटनाशक से त्वरित लाभ वाली तकनीक अपनाई थी जो आज तक चल रही है।

खेती किसानी से प्राप्त आय को टैक्स फ्री करना भी खेती के पिछड़े बने रहने का बड़ा कारण है। बगैर उत्पादन किये ही तिकड़ी ने अपने काले पैसे को सफेद किया है। उन्हें न तो उत्पादन से मतलब न ही आधुनिकीकरण से। वो क्यों आधुनिकीकरण करेंगे ? इनके कारण कृषि उत्पाद के सही आंकड़ों का आज तक पता नहीं चल रहा है।

वर्तमान में जितनी जगह में खेती होती हैं उतनी ही जगह में आधुनिक खेती की जाये तो पूरे विश्व को अनाज दिया जा सकता है। फिलहाल तो आसमानी आशीर्वाद खेती करवाता है, देश के कुछ क्षेत्र ही आज तीन फसलें लेते हैं।

खेती को उद्योग में बदला जाय। दो तीन गांवों की पूरी जमीन को बड़े चक में बदला जाए, वहां के लोगों को खेती के रकबे के अनुसार शेयर दिये जायें, ड्रीप तकनीक, वहीं उनके लिए भण्डारण की व्यवस्था, वहीं खरीदी और बहुत से पहलू हैं इन पर सुधार के जो कम जगह से ज्यादा उत्पादन करने पर सहायक हो सकते हैं। किसान हितैषी इन पर दृष्टि पात करें।

भूजल स्रोतों और नहरों का युक्तिपूर्ण, दीर्घ समय की योजनाओं से उपयोग किया जाय। अभी स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित योजनायें बनती हैं उन्हे बड़े स्तर की योजनाओं में बदलकर दीर्घकलीन फायदा उठाया जा सकता है।

खेती किसानी पर इतनी बहस इसलिए क्योंकि इसी

जमीन को आधार बनाकर झूठे आन्दोलनों से लगातार माहौल बिगाड़ा जा रहा है। आश्चर्यजनक बात हैं कि बुद्धिजीवी खेती बचाने के लिए जीजान से जुटे हैं पर किसानों की हालत पर जरा भी चर्चा नहीं होती है– उनका एकमात्र तर्क होता हैं कि भविष्य में अनाज की आपूर्ति कैसे होगी और किसान भूमिहीन हो जायेगा। दोनों का उत्तर है आधुनिक खेती से उपज बढ़ाई जाय और किसानों को रहने के लायक जगह दी जाय, बड़े चक वाली खेती में शेयर दिये जायें। काम करने वालों को मजदूरी रोजी के हिसाब से दी जाय। मैनेजमेन्ट में प्रत्येक परिवार को रोटेशन के आधार पर पद मिले। हर छह माह में पद बदलें जायें। प्रत्येक परिवार के सदस्य को काम करना आवश्यक हो।

अभी तो बीज, खाद, बिजली, पानी, कीटनाशक, कर्ज आदि में सब्सीडी बांट–बांट किसानों को वर्षा पर निर्भर रहने को प्रेरित किया जाता है। हर क्वालिटी की उपज को खरीदने की बाध्यता ने किसानों को क्वालिटी उगाने की सोच से हटा दिया। सरकार का सहारा, प्रत्येक कार्य के लिए, भस्मासुर के हाथ की तरह होता है। जमीनी स्तर की योजनाओं से खेत और खेत के रखवालों की परिस्थिति सुध ाारी जाय।

वर्तमान भूमि के योजनाबद्ध उपयोग की मांग करता है। अगर आज सचेत होकर योजनाएं न बनाई जायें तो भविष्य मुश्किल हो जायेगा। न तो औद्योगिकीरण रोका जा सकता है न ही खेतों में उपजे अनाज के बिना किया जा सकता है। खेतों की जमीन का पूर्ण दोहन, विकास के उत्पादों की पूर्ति के लिए विशेष औद्योगिक क्षेत्र और शुद्ध हवा के लिए वनों का होना, वर्तमान की मांग है। ये तीनों चीजें देश के सभी प्रदेशों में समान रूप से फैली होनी चाहिए जिससे भविष्य में अनुत्पादक प्रदेश मात्र मजदूर बनाने की फैक्ट्री न बनें।

इस देश में वैचारिक आजादी का अर्थ किसी भी बात का विरोध हो चुका है। नक्सलवाद– सड़क, अस्पताल, स्कूल का विरोध करता है। बुद्धिजीवी वनों को बचाने के लिए लगा है। बड़े बांधों के विरोधी, उद्योगों के विरोधी। राजनीति का विपक्षी दल हमेशा विरोध की तलवार भांजता रहता है।

यही बुद्धिजीवी वर्ग विकास के सारे फायदों में बराबरी हिस्सा भी चाहता है/अजीब विरोधाभास है। विरोधियों के द्वारा विरोध किया जाना कई मामलों में उचित हो परन्तु उपाय बताना भी तो उनका फर्ज होना चाहिए। विकास क्षेत्र विशेष पर केन्द्रीत न हो बस यह ध्यान रखा जाय।

बस्तर पाति फीचर्स

हंसना–जीवन का वरदान

हंसी पुष्प है जीवन का
मोहक और वरदायक
मानव की पहचान
प्रसन्नता सुरभि यह जीवनदायक
है सुधा सम मधुर
तरसते पाने का दानव–सुर
मिला न किसी अन्य प्राणी को
यह अमृतमय–नूर
नव–ज्योति है अंतर का
प्रेम सहज स्निग्ध ऋजु
मुखरित होता जब हास–हर्ष
हरता विषाद, विष–दंत–कटु
होता उपहास से से भला नहीं
तारे खगोल सम क्षणिक–लघु
आत्मभाव से जीकर हंसना सीखो
खिले जीवन का सच्चा सुमन मधु।
मुसकानों से प्रभा फैलती
निर्मल निश्छल, निर्वर मृदु
सुप्रभात की उषा बने
लेकर आये कल्पतरू
फूलों से प्रेमल, हंसना सीखो
भ्रमरों सा गुंजार करूं।
हंसते–हंसते जीना।
मरते क्षण भी हंसना सीखूं
बाल–सुलभ किलकारी भरूं।

धरनीधर सिंह
प्रबंधक
माता रूक्मिणी सेवा संस्थान
डिमरापाल,
जगदलपुर
मो.–9174690997

मुझे चाहिए एक मुट्ठी आसमान, दो गज जमीन, दो रोटी : उठो किसान

नरेन्द्र परिहार
सी 004, उत्कर्ष
अनुराधा
सिविल लाइन्स
नागपुर–440001
मो.–9561775384

क्या आप हम या और कोई परग्रही भी इस की कल्पना कर सकता है कि जीवन पानी, हवा, कपड़ा और भोजन के बिना रह सकता है क्या ? यह कल्पना ही भयानक है क्योंकि पानी और नैसर्गिक हैं। परन्तु भोजन पूर्णतः कृषि की गतिविधियों पर आधारित है और उसके केन्द्र में किसान ही रहेगा, भले वह मालिक हो या मजदूर। बागवानी हो फसल हो या जंगलों के कंद मूल, इनके केन्द्र में कृषक खड़ा रहता है। आज इनका संसार बाजार की मंहगाई, सहूलियतों के लिए आकर्षक वस्तुओं की चाहत ने किसानों को संपन्न दुनिया से निष्काषित कर दिया है। उनकी सतत् चार महिने का मूल्यांकन भी उनके द्वारा उत्पादन का न्यूनतम मल्य, मजदूर की रोजदारी जितना भी प्राप्त नहीं होता और भारतीय परिवेश में दिखावटी होड़ में तथा कुकुरमुत्तों से उपजे विश्वविद्यालयों में बेरोजगार शिक्षित व्यक्तियों के समूह को इनसे इतना दूर कर दिया है कि इनकी व्यथा न तो अब किसी को सुनाई देती है और न तो उनका क्रंदन अब फिल्मों का गीत बनता है।

'मेरे देश की मिट्टी सोना उगले, उगले हीरे मोती'

भारतीय किसान पहले ही इससे व्यथित था कि उसकी सुध–बुध कोई नहीं लेता और अब आई नई सरकार उनके खेत के छोटे टुकड़े भी छीन लेने को आतुर है और उनकी सहमी–सहमी सी प्रतिरोध की आवाज को भी हलक में घोंट देना चाहती है। हमारी सरकारें कुछ समाज चिंतकों द्वारा किये गये उपक्रमों से बड़ी फसल उत्पादन को बढ़ाचढ़ाकर प्रस्तुत करती हैं। परन्तु क्या उसके द्वारा स्थापित सरकारी कार्यालय, कृषि अधिकारी व कृषि अभियंता इन संस्थाओं के साथ मिलकर गांवों में सुधार ला रहे हैं और सीधे किसान की फसल की जिम्मेदारी ले रहे हैं ? जैसे जैविक खेती, जी एम पद्धति आदि। निश्चत ही इनके प्रयोग उपभोग से उत्पादक कर्ता, उपभोक्ता को कई प्रकार से शारीरिक कष्टों से गुजरना पड़ता है, पन्तु इनसे बचने के लिए और कृषि अनुसंधानों को कर इसमें परिवर्तन ला, उपयोगी व स्वास्थ्यवर्धक बनाया जा सकता है। हमारे देश के उच्च संस्थान है, परन्तु एक भी प्रभावी खोज प्रकाश में नहीं आई है जबकि इन विभागों पर करोड़ों अरबों खर्च किये जाते हैं। जो कि हमारे सकल उत्पादन का एक प्रति प्रतिषत भी नहीं है। यानी हम सिर्फ नौकरशाहों पर ही खर्च करते दिखाई दे रहे हैं और यह तब है जब हमारे छोटे किसान बहुतायत में हैं और लगभग तीन चौथाई प्रतिशत बीज बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा उपलब्ध कराये जा रहे हैं। तब सीधा प्रश्न खड़ा होता है कि सरकारी अनुसंधान व उनके द्वारा उपलब्ध शोध बीजों के महकमों का औचित्य क्या है ? क्या सरकार इन बातों से वाकिफ है कि लगभग सब्जियों पर जिनकी खपत भारतीय परिवेश में ज्यादा है, नियंत्रण निजी क्षेत्र की कंपनियों का है ?

काले धन को निकलवाने के उपक्रम में तथा पचास हजार के ऊपर स्थानांतरण ने बड़े–बड़े उद्योगपतियों को किसानों की जमीनों, बंजर जमीनों की तरफ आकर्षित किया और बाजार भाव से पांच गुने से भी अधिक दामों पर सन् 1998 के बाद खरीदना शुरू हुआ और यहां किसानों के गले में रस्सी का फंदा मजबूत होने लगा। वहीं वेजीटेबल फ्रेश के नाम पर कोल्ड स्टोरेज व बाजार भी इन निजी कंपनियों ने अपने हाथ में रखना शुरू किया। जहां कई गुना मुनाफा केन्द्र में रखा और व्यक्ति के औचित्य को प्रभावहीन किया गया, जिसकी क्रयशक्ति कैसे बढ़े और नैसर्गिक विपदाओं में उनकी फसलों को हरजाना कौन दे और उससे भी आगे बढ़कर कब दे ? बिल्कुल वैसे ही जैसे किसी परिवार की जीविका भरण करने वाले की आक्समिक मौत पर बीमा कंपनियों का असमय निधारण करना। उसकी मौत व हरजाने के बीच उसका आश्रित परिवार कैसे जीयेगा यह प्रश्न कंपनियों के लिए गौण है। वैसे ही विपदा और दूसरी फसल लाने के लिए किसान का परिवार कैसे जीयेगा, सरकारें मौन हैं। क्या हम यहां उन्हें निशुल्क राशन उपलब्ध नहीं करा सकते, जब तक मुआवजा तय न हो जाये ? क्या सरकारें इनकी इस बीच भूख से हुई मौत की जिम्मेदारी ले स्वयं के गले में फांसी का फंदा पहनने को तैयार हैं ? जबकि कारखाने के बंद होने पर भी उसे पुनः शुरू करवाने हेतु करोड़ों रूपये की माफी का ऐलान हमने कई बार देखा है, जबकि मजदूर अन्य रोजगार में स्वयं को स्थापित भी कर लेता है। तो ये घोषित छूट क्या, किसी भूख से मरने वाले मजदूर किसान के लिए होती है या करोड़पति परिवार के लिए ? आखिर प्रश्न उठना हमारे मन में स्वाभाविक है। तब क्या हमारे टेक्स का दुरपयोग नहीं हो रहा है ? नैसर्गिक विपत्ति के वक्त प्रधानमंत्री कोष, राजकीय कोष के लिए भीख मांगती हैं और फिर भी मदद सरकारी तौर तरीके से ही की जाती है। यहां हम तो सोचते हैं फिर कारखानों के

लिए भी सरकार ऐसी भीख मांगे या जमीन सहित कारखाने का प्रश्न मजदूरों पर छोड़ दे और उनके उत्पादन की सुरक्षा व बाजार सरकार उपलब्ध कराये। ठीक उसी तरह निजी कंपनियों के हाथों में किसानों की जमीन हड़पने का खूबसूरत अधिग्रहण नाटक बंद कर उनकी फसलों का सरकार स्वयं बीमा करे व बरबाद होने पर तुरंत मुआवजा प्रदान करे। भ्रष्टाचार होगा भी तो वहां जवाबदेही भी होगी और उनसे निबटा भी जा सकेगा। कम से कम कंधों पर किसान या परिवार के सदस्य की अर्थी तो नहीं उठेगी।

क्या कोई बतायेगा जहां भरपूर पानी उपलब्ध है, जमीन उपजाऊ है वहां भी हमारा किसान 2.7 टन प्रति हेक्टेयर से 4.6 टन प्रति हेक्टेयर गेहूं क्यों नहीं ला सकता ? क्या हमें यहां दूसरे देशों के मुकाबले अनुसंधान की कमी नहीं अखरती और इस सीधे हरजाने के लिए किसानों को मुआवजा अधिक मूल्य में फसल खरीदकर सरकार पूरा नहीं कर सकती ? क्योंकि हमारी जनसंख्या में ही इसकी पूर्णतः खपत है, इसमें किसान द्वारा आत्महत्या के उपरांत दिये मुआवजे को भी जोड़े तो नगण्य हो जायेगी। इस तरह हम अपने देश की 65 प्रतिशत आबादी का भला कर सकते हैं और उनके शहरी आकर्षण को कम कर शहरों को भोजन भी प्रदान कर सकते हैं। इसके बाद भी अनाज बचा तो निर्यात करें उसे देश को अपने खरीदी दाम पर अन्य खर्चे जोड़कर दें जो डॉलर, यूरो, पौंड मिले प्रति टन फिर भी नगण्य सा होगा।

यहां हम हमारी भारतीय मानसिकता को भी दोष देंगे, जो सदा प्रति एकड़ उत्पन्न अनाज से होने वाले नफे व जमीन बेचकर होने वाले नफे से तौलता है और यह विचार नहीं करता कि जमीन की कीमत बाजार की तरह बढ़ेगी और बेचकर जमा किये पैसे की बाजारी कीमत घटेगी और तब वह परिवार की बढ़ती आवश्यकता व उपलब्ध संसाधनों में तालमेल कैसे बैठायेगा, यही मानसिकता उसे फांसी का फंदा नहीं पहनायेगी, जब उसे मालिक से मजदूर बनना होगा ? हम अपने जातीय, वर्ण अभिमान में इतने जकड़े हुए हैं कि फांसी के फंदों की जकड़न यहां भी बढ़ जाती है। ये रिश्ते पगडंडियों पर तानों के रूप में सरक आंखों में अश्क लाते हैं। अब समय आ गया है, सरकारों का सरेआम विरोध निजी कंपनियों के बीजों को तिलांजली देने का। कैसे भी हो छोटे से अपनी जमीन के टुकड़ों पर अपने तरीके से जीने के पुराने संसाधनों व बीजों पर विश्वास करने का। क्या किसान को यह नहीं डराता कि आज तीस से भी कम उम्र में हार्ट अटैक आने, कैंसर, टीवी जैसे रोगों के साथ नये–नये रोग पैदा होने लगे, जिनके निदान पर खर्च, उत्पादन कर मिली अधिक फसल के नफे से भी अधिक है। क्या किसान भी इन पर विश्वास कर स्वयं में बदलाव लायेगा ? गांव–गांव स्वयं के सह–सहयोग से कोल्ड स्टोरेज लगा स्वयं बाजार का मूल्य तय करेगा। निजी कंपनियों का निषेध करेगा। वह क्यों गिड़गड़ाये बहुराष्ट्रीय को नाक रगड़ने दे। क्या किसान अपने गांव के साथ इन कंपनियों से नालियों, सड़कों, शौचालयों, ट्यूबवेलों पर अग्रिम खर्च कर गांव की फसल का सौदा करना सीखेंगे और ग्राम पंचायतें किसानों को आवश्यक भोजन की जिम्मेदारी लेगी ? चाहे फसल अनाज हो, सब्जियां हो, फल हो या कपास!

प्रश्न आज यह खड़ा हुआ है कि हमें बाजार चाहिए या अपने तरीके से जीने का अधिकार। इस लड़ाई में हमें समझना होगा जमीन, खनिज, हवा का मालिक कौन ? मालिक के खेतों में काम करने वाला जमीन रहित पर रोजगार पाने वाला मजदूर कौन और इन दोनों को सुविधा उपलब्ध कराने भले छोटे–छोटे व्यापारी, सामान के विक्रेता कौन ? जब इस 'कौन' को हम खोज लेंगे तो गांधी जी के अमीर और गरीब के जीवन की स्वतंत्रता को समझ लेंगे। याद रहे इसमें कसबों के मजदूर और जमीन अधिग्रहण के आसपास के लोगों को भी अपने लालच व सपनों को उन विस्थापितों के लिए त्यागना होगा। इसके साथ ही बाजार आधारित विकास की कल्पना को ही खत्म करना होगा और विकास की परिभाषा बदलनी होगी। क्यो कोई समझायेगा सन् 1991 से 2011 तक 6.5 करोड़ किसान जमीन अधिग्रहण करवा बगैर जमीन के जीवन यापन करने मजबूर हुए, कितनों को रोजगार उपलब्ध हुए, तीन लाख किसान आत्महत्या कर चुके हैं। उनके परिवार को सरकारों ने क्या रोजगार दिया ? जब हमारे संसाधनों में ही जीना है तो हमें तय करने दें कि हमारी जमीनों का हम क्या करें। सरकार कानून बनाये, अधिकारों पर नहीं अत्याचारों पर।

हमें ताज्जुब है प्रगति को, जी.डी.पी. दिखाकर हम शहरों, सड़कों व रैन बसेरों से कहने लगे हैं, परन्तु यही पक्के रैन बसेरे गांवों में क्यों नहीं, गांव के गांव शहर के नाम तले अपनी अंतिम सांसें गिन रहे हैं और कई लोग झुग्गियां, टपरियां, बिना स्नानघर, बिना शौचालय, नंगी सड़क के सिरहाने पसर रहे हैं। जिनके एक ओर हरिभरी भूमि बना फसल बंजर हो रही है। कंकर शहरों की तरफ से उचककर इनके हृदय को चोट पहुंचा रहे हैं। क्या आप समझ सकते हैं 24 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र वाला दुनिया का देश भारत,

दुनिया की 17 प्रतिशत जनसंख्या व 15 प्रतिशत पालतू जानवरों का देश है। अब सोचिए अगर कृषि ही खत्म हो जायेगी, गांव शहर में बदल जायेंगे तो खरपतवार भी नहीं होगी यानी जानवरों की मौत, किसान की हत्या ही होगी, क्योंकि वह रहने के लिए धूप, खाने के लिए दो रोटी के लिए भी संघर्ष नहीं कर सकेगा। तो क्या करें....?

हमें चाहिए शहरों के फैलाव पर पाबंदियां, कारखानों की बंजर जमीन पर स्थापना, रासायनिक कारखानों पर पाबंदी, बीज का सकल घरेलु उत्पादन व उत्पादन का लगभग प्रतिशत अनुसंधान पर खर्च, फसल का सरकारी खर्च पर बीमा जो किसान की फसल बिकने पर प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन व असल उत्पादन के मापदण्डों को निर्धारित कर उसकी बिक्री से प्रीमियम से सरकारी खजाने में जमा हो। भारत सरकार द्वारा बिजली व फोन पर आने वाले सर्विस टैक्स को ही इन किसानों पर इस तरह खर्च किया तो सार्थक होगा। वैश्विक बीमा कंपनियों की जीवन बीमा पर नहीं बल्कि फसल, गांवों के आवास, फसल व गांवों में उपयोग आने वाले उपकरणों पर ही आमंत्रण दें। निश्चिंत किसान की बेफिक्री उसे अधिक उद्यमी व उत्पादन क्षमता बढ़ाने में मदद करेगी। वरना सरकार के नुमाइंदों को राज के उन सिपहसलारों से तुलना करनी पड़ेगी, जो राजाश्रय में राजा की प्रशंसा कर उसे उसके शौक में उन्मादी बना, स्वयं के परिवारों को विदेशों में विस्थापित कर देश को गुलाम बना छोड़ गये थे।

किसान भाईयों आने वाली पीढ़ी आपसे यह नहीं पूछेगी जमीन कैसे, किसने और क्यों बेची या किस सरकार ने हड़पी, वह सीधे प्रश्न करेगी गर भविष्य आप बना नहीं सकते थे, पेट में दाना पानी दे नहीं सकते थे तो ऐसी आबोहवा में पैदा ही क्यों किया ? आज की सरकार का भूमि अधिग्रहण पर व खनिजों की नीलामी पर सरकारी खजाने की बढ़ोतरी का हवाला देकर जो अंधाधुंध औद्योगिकीकरण व रोजगार के नाम पर जो दोहन, शोषण हो रहा है, वह आत्महत्या की परिभाषाओं को बदल अच्छे दिन का दुःस्वप्न जरूर है। याद रहे कृषि, कृषि–भूमि, और कृषक हमारे जीवन का यथार्थ सत्य हैं। अंबानी, अदानी की दुनिया में टाटा, किर्लोस्कर, बिड़ला का देशप्रेम व देश के प्रति सोच का भाव अब बिल्कुल निष्प्राण हो गया है और सेवा के स्थान पर लाभ, उपयोगिता व औचित्य ने ले लिया है। अब हमें इन्हें त्याग बंधु प्रेम, सहकारिता व उत्पादन बढ़ाने की प्रक्रिया व संसाधनों पर ज्यादा ध्यान देना होगा। देश के अंदर करोड़ों निवास डामरी सड़कें, पक्के आशियाने तब बेमानी हो जायेंगे, जब हम सड़कों पर दो रोटी के टुकड़ों के लिए खूनी संघर्ष करेंगे। हमें अपने दर्शन अपनी विचारधाराओं, संस्कृति को संजोना होगा जिसमें हमारी पीढ़ी का भविष्य है, भले ही वे कपूत क्यों न हों परन्तु देश में जिन्दा रहने के लिए आवश्यक उपलब्धता और एक मुट्ठी आसमान, दो गज जमीन तथा दो रोटी पर उनका भी अधिकार है, रस्सी गले में नहीं बल्कि सरकार की शोषक नीति के खिलाफ उनके गले में बांधो।

जय मजदूर, जय किसान, मेरा भारत महान
मैं हूं गांव का बागड़बिल्ला, मुझे शहर की मिल गई नार रे।
इस लम्बे हट्टे–कट्टे बिल्ले का, तूने करके रख दिया गार रे।।

काव्य

आज का गीत

घने जंगलों और पहाड़ों पर
उनका निवास स्थान।
कमर में पटका, माला–मूंदरी,
थोड़ा–सा उनका परिधान।
माटभूमि के रहवासी
पेंदा खेती उनकी पहचान।
निडर, साहसी, मतवाले,
मांदर की थाप पर करते गान।
छोटा–सा संसार उनका,
सरपंच रखता उनकी कमान।
रेलो–रेलो की कोकिल संझा,
इनका प्यारा–सा जहान।
तला–मुत्ते, राव–राहुड़
पग–पग में इनके भगवान।
सिरहा–बैगा इनके डॉक्टर
भले ही जाये जीवित के प्राण।
मरने पर भी गम न करते
और करते सूअर कुर्बान।
बगल में रेडियो, हाथ में घड़ी
बदलते युग का ये फरमान।
हम सुधरेंगे, युग बिगड़ेगा
शायद उनको ये है भान।
किन्तु–परन्तु, लेकिन–वेकिन,
छोड़ो तुम अपना अभियान।
तुम सुधरोगे, आगे बढ़ोगे
तभी बनेगा देश महान।।

धनेश यादव 'कमलेश'
स्वास्तिक इंजीनियरिंग
बखरूपारा, नारायणपुर
जिला–नारायणपुर छ.ग.
मो. 09424286572

सजा

समगति से चल रही आलोक की सांसो से मुझे अजीब सी वितृष्णा हो रही है। मन होता है कि कहीं दूर भाग जाऊ जहाँ कोई भी नहीं हो सिर्फ गहरा ठण्डा पानी और उसमें सिर से पैर तक डूबी मैं, और कोई नहीं, कहीं नहीं। कभी कभी सोचती हूँ कि क्या आलोक को यह सब समझ आयेगा। नाड़ी और धमनी पर दिन रात बात करने वाला क्या दिल की धड़कनों को बायोलॉजिकल ढांचे से इतर महसूस कर पायेगा। क्या इस हार्ट स्पेशलिस्ट को इस देह से परे जो धड़कने हैं वह सुनाई देंगी, शायद कभी नहीं। मेरी सिसकियों और उनके नींद के खर्राटे की गति सम है। अब मैं अपने को इस बिस्तर पर रोक नहीं पाऊँगी। प्रिया फ्रीज से बर्फ और ठण्डे पानी की बोतलों से पानी बाल्टी में डालती है। वह यन्त्रवत हाथों से पानी शरीर पर डालती है। हाथ से क्लचर जैसे ही बालों से हटते हैं वैसे ही लम्बे काले बाल गर्दन से होते हुए कमर तक खुल जाते हैं। प्रिया को याद आता है कि इन बालों से खेलना आलोक को बहुत पसन्द है। शादी की पहली रात आलोक पास में आते ही इन बालों को खोल देते हैं। हॉस्टल में रहते हुए जब हमारी मित्रता हुई थी तभी से वह इन बालों के दीवाने हैं पर आज शादी की पहली रात आलोक के पास इन बालों को खोलने का अधिकार है। वह जानती है कि आलोक आज किसी सीमा में नहीं बधेंगे। आज तक शादी की बात कहकर ही वह आलोक को रोकती आयी है। वह आलोक को ध्यान से देखती है। उसका प्यारा रूप अपने भीतर सहेज कर रखना चाहती है। ये झील सी आंखे, काले बाल और यह चौड़ा सीना जिसमें छुपकर सारे दर्द बिखर जाते है। प्रिया वहाँ छुपना चाहती है पर अपने ऊपर झुके आलोक के सीने पर निगाह पड़ते ही उसके रोंए खड़े हो जाते है, फिर वही भयावह मंजर – एक औरत पर झुके कई पुरूष उस औरत को क्षत–विक्षत करने को उद्यत, आखों में आंसू लिए एक बेबस छोटी लड़की, और चित्कार करती औरत अपने ऊपर से पुरूषों को हटाने का प्रयास करती हुई। अचानक उस औरत में मां का चेहरा दिखाई देता है और वह छोटी लड़की प्रिया बन जाती है। उसका दम घुटने लगता है और घबड़ाहट में वह आलोक को धक्का देकर खड़ी हो जाती है। आलोक की मुस्कान उनके चेहरे से गायब हो गई थी। प्रिया के दिल में आलोक की वही पुरानी सधी मुस्कान अटक जाती है। यादों सें बाहर आकर प्रिया ठण्डा पानी सिर पर डालती है। प्रिया को राहत महसूस होती है जैसे आग पर पानी की छोटी–छोटी बौछार पड़ती है वैसे ही प्रिया को अपना शरीर महसूस होता है। गाउन पहन कर वह दूसरे कमरे में आकर बैठ जाती है। अपने आप में खोये हुए प्रिया को काफी समय हो जाता है तभी आलोक के हाथ प्रिया के बालों को सहलाते है। आलोक ने मुस्कुराकर पूछा क्या आज भी नींद नहीं आई।

''नहीं''

''क्यों तुम्हें नींद नहीं आती है ?'' आलोक के प्रश्न पर शांत रहकर प्रिया जबाब देती है–

''पता नहीं।''

''यह कोई जबाब नहीं है''– आलोक के कहते ही प्रिया बोल पड़ी –

''मेरे पास जवाब नहीं है।''

''तो सवाल करो। शायद सवाल करने से तुम्हें अपनी बेचैनी और छटपटाहट का पता चल जाय।'' आलोक के इतना कहते ही प्रिया की आखों में कुछ बूंदे छलक जाती हैं। वह कहना चाहती है कि मुझे डूबने से बचा लो आलोक। मैं अपने जीवन के अधूरेपन को जबरदस्ती ढंकने की चाहत में अपना अतीत न भूल पाने के कारण वर्तमान जीवन से असन्तुष्ट हूँ। पर तुम्हें लगेगा कि मैं फिर वही व्यर्थ की बाते लेकर बैठ गई हूँ। फिर तुम्हारे पास बातें सुनने का वक्त कहाँ है। दिल की बातें याद करके नोट नहीं की जाती हैं कि तुमने कहा बताओ क्या बात है और मैं लिखी बातें कह दूं। दिल की अपनी एक गति है वह अपने हिसाब से चलता है वह कभी सीधे असल मुद्दे पर आता है और कभी सब कुछ व्यर्थ कहने के बाद भी नहीं आ पाता है। पर यह सब बातें मैं कैसे समझा पाऊँगी तुम्हें। तुम तो दवा के पर्चे से लेकर मरीज तक, नर्स से लेकर हास्पिटल तक सिर्फ मुद्दे की बात करते हो। इतना वक्त कहाँ है तुम्हारे पास की व्यर्थ की बातें की जाय और उन बातों से भावनाएं जोड़ी जाय। अचानक निगाह मिलते ही अहसास हुआ कि आलोक मुझे लगातार देख रहे हैं। मैं यह आँखे बर्दास्त नहीं कर पाऊँगी । मैं वहाँ से भागना चाहती हूँ। मैंने महसूस किया मेरे होठ आलोक से कह रहे थे– मैं लॉन में टहलने जा रही हूँ। नंगे पैर पर हरी घास कितना सुकून देती है। काश ये ओस की बूदें इन पैरों से गुजर शरीर के भीतर चली जायें और अन्दर की तपन कुछ कम कर दें। पर यह सुखद अहसास क्षणिक होता है। अन्दर तो अब....।

''अरे! आप चाय क्यों बना लाये।'' आलोक को सामने से आते देखकर प्रिया के मुंह से अनायस निकल पड़ा। आलोक की गहरी नीली आँखे और होंठ मुस्कुराते हुए कहते हैं '' कभी–कभी तो पत्नी की सेवा का मौका मिलता है।'' मुझे भी हंसी आ जाती है ढेर सारा प्यार भीतर उमड़ने लगता है।

डॉ. शुभा श्रीवास्तव
(एम0ए0, पी.एच.,डी0)
शुभा स्टेशनरी मार्ट
एस. 8/5–5–1गोलघर
कचहरी, वाराणसी
पिन–221002 उ0 प्र0
मो.– 9455392568

कितना ख्याल रखते हैं मेरा। जी चाहता है पास बिठाकर चूमती जाऊ तब तक जब तक भीतर सब कुछ ठीक न हो जाय। झुके हुए आलोक की शर्ट की बटन खुले थे प्रिया हाथ बढ़ाकर आलोक के सीने को सहलाना चाहती है मगर फिर वही भयावह मंजर सामने आ जाता है। एक औरत पर टूटते हुए कई जानवर। वह सिहर जाती है। जब भी वह किसी पुरूष के शरीर को देखती है उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। चाहकर भी वह आलोक को पूरी तरह से अपना नहीं पाती है वह आलोक से कहना चाहती है कि इस मंझधार से मुझे निकाल लो पर शब्द अटक कर रह जाते हैं और हाथ रूके रह जाते हैं। सिर्फ कान सुनते हैं आलोक पूछ रहे हैं–''मां का हाल चाल पूछा ?'' बगैर मेरी मर्जी के होंठ जवाब देने के आदी हैं। भीतर चाहे जितना तूफान हो बाहर से शान्त माहौल बनाये रहते हैं। तभी तो बड़ी सहजता से जवाब देते हैं–''भूल गई पूछा नहीं।'' आलोक पूरा जवाब चाहते थे इसलिए फिर कहा– ''तुम्हे क्या हो गया है प्रिया। मुझे एक हफ्ता हो गया यह बताये कि मां की तबीयत ठीक नहीं है। मिलने नहीं जा सकती तो फोन तो कर सकती थी।'' जानती हूँ मेरा यह जवाब आलोक की सन्तुष्ट नहीं कर पायेगा कि मैं सच में भूल गई। ''तुम भूल नहीं गई प्रिया बल्कि तुमने चाहा ही नहीं। तुम दूरियाँ बढ़ा रही हो। वह तुम्हारी मां है। तुम ठीक नहीं कर रही हो प्रिया।''

''क्या ठीक नहीं कर रही हूँ मैं–''

प्रिया के कहते ही आलोक बोल उठा–''पहले भी तुम रूखी बात करती थी मां से। मैंने कई बार समझाया है तुम्हें पर अब तो तुम सम्पर्क भी नहीं करती हो। पापा बता रहे थे कि मेरे फोन से हाल चाल मिलता हैं तुम्हारा। खुद नहीं करती हो पर उनका फोन क्यों नहीं उठाती हो।''

''मेरी इच्छा नहीं होती है किसी से बात करने की।'' प्रिया के कहने पर आलोक बिफर जाता है। ''मुझसे भी बात करने की इच्छा नहीं होती।''

'मैंने कहा न किसी से नहीं''–प्रिया यथावत बनी रहकर कहती है तो आलोक पूछ बैठता है–''जान सकता हूँ मेरा अपराध क्या है।'' आलोक के कहने पर प्रिया गहरी सांस लेती हुई कहती है–''दोष तुम्हारा नहीं है। सबका कारण मैं हूँ। असन्तुष्टी मुझमें है।''

यह असन्तुष्टी किससे है, मुझसे–आलोक जानना चाहता है पर प्रिया शांत होकर कहती है–''पता नहीं।'' आलोक इस जवाब से खीझ जाता है और कहता है–''खुल के कहो ना कि मुझसे असन्तुष्ट हो। मैं भी महसूस करता हूँ कि तुम असन्तुष्ट हो। चाहे शरीर के पास आऊं चाहे मन के पास, मुझे सिर्फ एक चीज मिलती है तुममें वह है असन्तुष्टी। पर जीवन की किसी भी रिक्तता के लिए नाता नहीं तोड़ा जाता है।''

प्रिया सीधा जवाब देती है–''मैंने कौन सा नाता तोड़ा है। एक पत्नी का हर फर्ज निभा रही हूँ और....! प्रिया की बात पूरी होने से पहले ही आलोक बोल उठता है–''मशीन बनकर फर्ज निभा रही हो। अपने को अन्दर ही अन्दर मार रही हो। मेरे पास आती भी हो तो मशीनी शरीर के साथ। प्रिया मैं प्यार करता हूँ तुम्हें। तुम्हें खुश देखना चाहता हूँ।''

''मै खुश हूँ।'' कहते हुए प्रिया खुद को टटोलती है। पर आलोक सच जानता है इसलिए कहता है–''अपने अन्दर अपनी दुनिया बनाकर अपने आप को सबसे काट कर खुश हो तुम।'' आलोक के इस जवाब से प्रिया तल्ख हो उठती है और तीखे शब्दों में कहती है– ''जिनसे कटने की तुम बात कर रहे हो उनके विषय में मैं बात नहीं करना चाहती।''

''कारण जान सकता हूँ क्यों ?''–कहते हुए आलोक अपने को संयत रखने की कोशिश करता है।

''क्योंकि समाज के ताने सुन कर थक गई हूँ मैं''– कहते हुए प्रिया बिफर पड़ती है।

''तुम थक इसलिए गई हो क्योंकि तुम भी समाज का हिस्सा बन गई हो। बेटी नहीं रह गई हो तुम।'' आलोक ने खीझ के साथ कहा तो प्रिया बोल उठी–''मैं रहना चाहती भी नहीं हूँ।'' तब आलोक ने सख्त आवाज में कहा–''यह तुम्हारा दुर्भाग्य है।''

''तो क्या वह मेरे मां बाप है यह मेरा सौभाग्य है। हर वक्त राह चलते यह सुनना कि यह उसी की बेटी है जिसके साथ दंगे में बलात्कार हुआ है यह मेरा सौभग्य है। पिता नपुंसक हैं, मैं उसी बलात्कार की पैदाइश हूँ यह मेरा सौभाग्य है। है न ?'' कहते हुए प्रिया लगभग चीख पड़ती है। उसे अपने आपसे घृणा होने लगती है। आलोक अपने आप को संयत रखते हुए कहता है– तुम दूसरों के कर्मों की सजा अपनी मां को क्यों दे रही हो। अपने आप से अपने परिवार से प्यार करो तब सब ठीक होगा।

''कुछ ठीक नहीं होगा। आदर्श बखानना आसान है उस पर चलना मुश्किल। वह पीड़ा मैं जान रही हूँ तुम नहीं समझोगे।'' प्रिया ने उलाहने में कहा तो आलोक आश्चर्य से बोला ''मैं नहीं समझूंगा? बिना समझे ही तुमसे प्यार किया और शादी की है जिसे पूरी ईमानदारी से निभा रहा हूँ।'' पर प्रिया आज बहुत कुछ कहना चाह रही थी तभी तो कह रही थी –''प्यार तुमने तब किया जब मेरा अतीत, मेरा परिवार नहीं जाना था। मैनें तुम्हें जानबूझकर बताया ही नहीं था। क्या कहती मैं कौन हूँ और क्या बताने लायक था मेरे जीवन में।'' प्रिया के कहने पर अपना क्रोध जब्त कर आलोक ने कहा–''कुछ बताने लायक रहा हो या नहीं पर सब कुछ जानने के बाद भी तुमसे शादी की है और अपने प्यार को निभा रहा हूँ।''

''क्या पता समाज के सामने अपने को आदर्शवादी सिद्ध करने के लिए तुमने यह सब किया हो।'' प्रिया के ऐसा कहते ही आलोक का धैर्य जबाब दे जाता है और वह फट पड़ता हैं–''तुम पागल हो गई हो, तुमसे बात करना बेकार है।'' आलोक चला जाता है। प्यालियों में रखी चाय ठण्डी हो गई थी। प्रिया अपने भीतर वही ठण्डापन महसूस करती है। तो क्या आलोक सही कहते है कि मैं ठण्डी हूँ। बिस्तर से लेकर रिश्तों तक, होंठो से लेकर दिल तक। मैं क्यों अपने प्यार और गृहस्थी की तिलांजली दे रही हूँ। अपने अतीत से मैं क्यों नहीं बाहर आ रही हूँ। आलोक सही कहते हैं मैं अपने जीवन को अन्धेरी खाई में ढकेल रही हूँ। खुद को अस्वीकार करते करते में हर रिश्ते से दूर जा रही हूँ। यह क्या अपने गालों पर मैं आँसूओं की धार महसूस कर रही हूँ। आलोक नाराज हैं इसलिए ? फिर क्यूं लड़ती हूँ मैं? जिसे अपने शरीर के निकट एक मिनट भी बर्दाश्त नहीं कर सकती उसकी दूरी भी असहनीय है। क्या मेरा प्यार अभी भी जिन्दा हैं। हां जिन्दा है तभी तो माफी मांगने के लिए मैं उनके सामने खड़ी हूँ– नाराज हो गये है।''

''नाराज ? किस पर ? तुम पर ! तुम्हें नाराजगी, गुस्सा, प्यार इन सब शब्दों के मायने पता हैं ?'' जूते का रिबन बांधते हुए आलोक ने कहा तो प्रिया अन्दर से द्रवित हो गई और कहा–''अच्छा माफ कर दीजिए। आज घर चली जाऊँगी और कोशिश करूंगी कि ऐसा कुछ न हो जिससे आप दुखी हों।'' आलोक तिरछी निगाहों से देखकर सच जानना चाहता है पर प्रत्यक्ष में कहता है–''मैं तुम्हें खुश देखना चाहता हूँ। जीवन को जियो प्रिया। शादी के पहले तुम्हारी असन्तुष्टी, तुम्हारी पीड़ा मेरी बाहों में आकर खत्म हो जाती थी पर अब लगता है मेरी बाहें तुम्हारे दुख को नहीं थाम पाती हैं। कहने से हर दुख पिघल जाता है। अन्दर ही अन्दर रखने से लावा बन जाता है। अगर मुझमे कोई कमी हो तो कहो।'' प्रिया का गला भर आता है वह आलोक की बाहों में समा जाती है और कह उठती है–''तुममे कोई कमी नहीं है आलोक, मैं ही अपने आपसे, अपने अतीत से छुटकारा नहीं पा रही हूँ। मुझे डूबने से बचा लो। तुम्हारे प्यार के सिवाय मेरे पास कुछ नहीं हैं।'' आलोक प्रिया के आँसू भरी आँखों को चूम लेता है। प्रिया अपने भीतर ठण्डक महसूस करती हैं और अपने को आलोक की बाहों में ढीला छोड़ देती है। अपनी बाहों में भरकर उसे तब तक सहलाता दुलारता है जब तक वह सो नहीं जाती है। आलोक यथावत बैठा रहता है कई दिनों बाद प्रिया सोई थी वह उसे उठाना नहीं चाहता है। सोकर उठते ही प्रिया की निगाह घड़ी पर जाती है। उसने आश्चर्य से पूछा–''आज आप क्लीनिक नहीं गये?'' प्रिया के चेहरे पर हल्की मुस्कान आलोक को अच्छी लगती है। वह अपनी बांहो का घेरा और कस लेता है। प्रिया अपना सिर आलोक के कन्धे पर रख लेती है और गहरी सुकून की सांस लेती है। आलोक उसे मां से मिलने के लिये तैयार होने को कहता है और क्लीनिक फोन करके अपने न आने की सूचना दे देता है। प्रिया अपने को अन्दर से तैयार करती है कि वह सामान्य रहे। अपने को सहज रखते हुए प्रिया घर में आगे बढ़ती है पर दरवाजे पर आने से पहले ही उसके पांव ठिठक जाते है। मां का क्रन्दन उसे बाहर से ही सुनाई दे जाता है–''मेरी सजा लगता है मेरी मौत के बाद ही खत्म होगी।''

''आभा! जब गुनाह तुमने नहीं किया तो फिर सजा कैसी? आज तक समाज से तुमने साहस के साथ लड़ा हैं'' पापा के कहते ही मां का रूआंसा स्वर उभर आया–''समाज से लड़ लिया पर अपनों से हार गई। अपनी ही औलाद न मुंह देखना चाहती है और न ही भूले से यह पूछती है कि मां जिन्दा है या मर गई।''

''आभा ! प्रिया अभी नादान है वह आज नहीं तो कल जरूर समझेगी। समाज के तानों ने उसे सच देखने ही नहीं दिया है। कहीं न कहीं वह खुद सजा भुगत रही है। पहले तो वह बलात्कार की अनचाही पैदाइश है इस गम से तो उबर जाये तब तो वह तुम्हारे दर्द के बारे में सोचेगी। समय पर छोड़ दो सब ठीक हो जायेगा।'' पर पापा का यह कहना मां को समझा नहीं सका–''कुछ ठीक नहीं होगा। प्रिया की उम्र के साथ उसकी नफरत भी बढ़ती जा रही है। वह मेरे कारण न बचपन जी सकी और न आज जी पा रही है मेरे गुनाह की छाया उसके जीवन को ढंक दे रही है।'' मां की बात सुनकर पापा के स्वर में रोष आ जाता है।–''वह तुम्हारा गुनाह नहीं है उनका गुनाह है जो अपने को मर्द कहते हैं। पर मैं उन्हें नपुंसक मानता हूँ।'' मां ने कहा– आप बहुत अच्छे हैं। पहले अहसास नहीं था पर आप से जाना है कि प्यार में बड़ी ताकत होती है। आपके दिये हुए साहस से ही समाज को जवाब दे पाई हूँ। आपको याद है कालोनी में मिसेज शर्मा ने जब आपको नामर्द कहकर हमारा मजाक उड़ाया तो आप का हाथ थामते ही न जाने कहां से शब्द आते गये और मैं उन्हें ऐसा जवाब दे पाई जो मैं खुद शायद कभी सोच नहीं पाती जो कह गई–मिसेज शर्मा क्या शरीर के गणित से मर्द शब्द बना है। आपका पति मर्द है इससे आप को खुशी मिल रही है पर क्या आप जानती हैं कि उसी मर्द ने मेरे ऊपर मर्दानगी दिखाई थी। आपके आँखे फाड़ लेने से सच्चाई नहीं बदल जाती आपकी निगाहें गवाह हैं कि आप अपने पति की मर्दानगी से शर्मिन्दा हैं। मेरे अतिरिक्त और भी अनेक सच आपको पता है बस नाम आभा की जगह नीलम या निलोफर है। पर मेरी आँखों में अपने पति के लिए कोई शर्म नहीं है क्योंकि मैं जानती हूँ कि

दिन के उजाले और रात के अन्धेरे में भी हमारे बीच सिर्फ प्यार है और यहां मौजूद हर शख्स के पास वह नहीं है। जो मेरे पास है। दुनिया का सबसे अच्छा पति और सन्तुष्ट प्यार।''

''आभा तुमने ठीक कहा था। वह तुम्हारा साहस था मेरा तो सिर्फ साथ था।'' पापा के कहने पर मां कह उठी– ''नहीं सिर्फ आप के कारण। उस घटना के बाद तो मैं आपसे निगाह भी नहीं मिला पा रही थी पर आपने जताया कि गुनाह मेरा नहीं है। मुझे इंसाफ दिलाने के लिए आपने क्या नहीं किया। लोगों ने आप को नपुंसक कहा, प्रिया को बलात्कार की पैदाइश कहा जबकि आप भी जानते थे कि प्रिया आपकी संतान है। आप सब सहते गये। तब तक लड़े जब तक उन गुनहगारों को सजा नहीं मिली।''

''फिर भी उन्हें सजा दिलाने में लम्बा समय बीत गया। उन गुनहगारो की सख्त सजा दिलाने के लिये और अपनी पत्नी के प्यार के कारण मैंने यह सब किया, कोई अहसान थोड़े ही था। तुम्हारा साथ और साहस जरूर.....'' प्रिया इससे आगे पापा के कहे एक भी शब्द नहीं सुन पाई और उल्टे पांव घर वापस आ गई। प्रिया की पूरी दुनिया ही उलट गई थी। उसे अपने आप से घृणा हो रही थी। आज उसे अहसास हुआ कि वह कितनी छिछली सतह पर जी रही थी। बेचैनी और घबराहट की स्थिति में वह बैठ जाती है। पसीना पोंछने के लिए वह जैसे ही तौलिया उठाना चाहती है वैसे ही बिस्तर पर उसे मां की क्षत–विक्षत देह दिखाई देने लगती है। वह चीख उठती है। अपनी बदहवास स्थिति का पता उसे कुर्सी से टकराने से होता है। आलोक दौड़कर उसे गिरने से बचाता है। प्रिया की निगाहे जैसे ही आलोक से मिलती है वैसे ही पापा साकार रूप में उसके सामने आ जाते हैं। वह आलोक की आंखों में पापा को देखती है वैसे ही असहाय, पीड़ा छुपाये हुए पापा। आलोक और पापा एक जैसे हैं, प्यार के लिए सब कुछ करने को तैयार और मैं ?अपनी ही दुनिया में सब भूलकर उन्हे सताती रही। भीतर की टीस बाहर आने के लिए छटपटाने लगती है पर भावों के वेग को वह आँसू बनने से रोकने का प्रयास करती है। प्रिया सोचती है पापा की आँखे कैसी दिखती होगीं जब पत्नी के बलात्कार की घटना याद आ जाती होगी। सामने से आने वाली हर आँख पत्नी के बलात्कार को पुनः दिखाती होंगी और प्रतिदिन उसी घटना की पुनरावृत्ति होने पर पापा ने कैसे सहा होगा और सब सहने के बाद मां के सामने सामान्य होना कितना असहज रहा होगा। क्या पापा मां को वैसे ही स्वीकार कर पाये होंगे जैसे उस घटना के पहले करते थे। मां के पास जाते ही वह घटना मस्तिष्क में कौंध नहीं जाती रही होगी। तब पापा भी आलोक की तरह अपने को संयत रखते रहे होंगे। और मां...? क्या वह पूरे जीवन में एक पल भी उस घटना को भूल पाई होंगी। जब कभी आलोक मेरे साथ जबरदस्ती कर जाते है तो शरीर का हर हिस्सा दर्द उभार जाता है। उस समय जी चाहता है कि किसी धारदार चीज से शरीर के हर हिस्से को धीरे–धीरे काट दूं शायद बहता खून तपिश से चैन दे दे, या कोई ऐसा स्क्रबर हो जिससे पूरे शरीर को रगड़ दूँ इतना रगड़ दूँ कि वह छिल जाये और उससे रिसते खून की ठण्डी लहर तपिश को दूर कर पाये। फिर मां की तपिश तो दूसरी और गहरी थी। प्रिया के मस्तिष्क में शरीर को रगड़ती मां का अक्श उभर आता है। पर क्या वह बहता खून तपिश को कम कर पाता होगा। अपनी गर्म और जलती त्वचा को सहलाती मां क्या कभी ठण्डक महसूस कर पाई होगी ? नहीं। प्रिया के सामने बर्फ के पानी से भरी बाल्टी और उस ठण्डे पानी से नहाती अपनी तस्वीर उभर आती है पर यह क्या यह चेहरा तो मां का है। हरी घास पर नंगे पांव चलती मां, ओस की बूदों से भीतर शीतलता का इन्तजार करती मां, आँखो में आँसू लिये हुए मां बेचैन छटपटाती मां। और न जाने कितने अक्श प्रिया की आंखो के आगे घूम जाते हैं। वह जानती है कि दर्द और तपिश का रिश्ता क्या है। जब यह आज तक उसके अन्दर से नहीं जा सका है तो मां कहाँ दूर कर पाई होगी इन्हें। कहने में कितना छोटा शब्द है 'दर्द' पर अपने अहसास में उतना ही बड़ा और गहरा है। कुछ दर्द के निशान दिखाई पड़ते है और कुछ के नहीं। जो नहीं दिखाई पड़ते हैं वही ज्यादा गहरे होते है। मां का दर्द छुपाये हुए चेहरा मेरा पीछा नहीं छोड़ता है। हॉस्टल में रहने पर भी मां की आँखें और उनका चेहरा मैं कभी भूल नहीं पाई। जीवन में बलात्कार की पैदाइश शब्द इतना हावी हो गया कि अपने जीवन से ही भागती रही। भागते–भागते अनजाने में मां को कितना दर्द दे गई मैं। बलात्कार की पैदाइश होने का दर्द तो याद रहा पर जिसने बलात्कार की पीड़ा सही उसे मैं भूल गयी। क्या कभी मैं उस दर्द को महसूस कर सकती हूं। मैं क्या कोई भी स्त्री यह नहीं महसूस कर सकती है। प्रिया रोना चाहती है पर आँसू आँखों में अटक जाते हैं। वह चीखना चाहती है पर शब्द बाहर नहीं आते हैं। वह आलोक को देखती है असहाय, निरूपाय और किंकर्तव्यविमूढ़। आलोक प्रिया के चेहरे को देखता है और द्रवित हो जाता है प्रिया का ऐसा चेहरा आज तक नहीं देखा था। वह उसे घर ले जाता है और बाहर ही छोड़कर चला जाता है। प्रिया जानती है वह अन्दर नहीं आयेगा क्योंकि उसे पता है कि प्रिया को समय चाहिए। प्रिया दरवाजा खोलकर अन्दर जाती है। बिस्तर पर मां और उनके बगल में पापा कुर्सी पर बैठे रहते हैं। तीनों की निगाहें एक दूसरे से मिलती हैं। हर आँखो में भोगी गई सजा बूंदो में रखी रहती है।

काव्य

बनारसी साड़ी–पहला प्यार

पुराने संदूक में
पुराने छायाचित्रों, चूड़ियों, गुड़ियाओं
ग्रीटिंग कार्डों, फ्राकों के नीचे
एक पुरानी चादर में लिपटी
रखी होती है
भारी भरकम ज़री कामवाली
'बनारसी साड़ी'
हर किसी के पास।
और अंटी पड़ी होती है
अलमारियों, अलगनियों से लेकर
बेडरूम की कुर्सियों पर
साड़ियां हर तरह की,
घर की, बाहर की
पार्टियों की, कार्यालयों की।
और भरा पड़ा है
इनकी मैचिंग का सामान।
क्यों न हो बहुतायत इनकी
आखिर जीवन चलता है इनसे
और चलता है रोज का कार्यव्यवहार।
लेकिन तनावों से मुक्ति पाकर
फुर्सत के दिनों, पलों में
करने को आत्म साक्षात्कार

वंदना राठौर
गुरूद्वारा के पीछे
नया बस स्टैण्ड
जगदलपुर (बस्तर)
मो.–09406407899

देखने को अपना मूल स्वरूप
खोलते हैं हम पुराना संदूक।
हाथ फेरते हैं एक–एक चीज पर
और ठिठक, सिहर जाते हैं अंत में,
सबसे नीचे रखी
भारी भरकम बनारसी साड़ी तक।
छू–छू कर रोमांचित होते रहते हैं
अपनी ही स्मृतियों के खण्डहरों के बीच
अजनबी पर्यटकों की भांति घूमते हुए
और फिर कोई आहट, आवाज, पुकार
विवश करती है।
धीरे से संदूक जमाने के लिए
और पुराना ताला जड़ने को
जिसकी चाबी कभी घूमती नहीं
'हममें से प्रत्येक का मन
एक पुराना संदूक है।'
बनारसी साड़ी की तरह
सहेजा छिपाया है 'पहला प्यार'
जड़ा है मन के संदूक पर
नैतिकता, परम्परा का ताला
जिसकी चाबी गुम नहीं हुई
कहीं रखी है बहुत ध्यान से
पर आसानी से मिलती भी नहीं।

ग़ज़ल

वही मंजिलों की दिशा जानता है
बता देगा, वो रास्ता जानता है।
मुझे क्या पता क्या हो अंजाम आगे,
फ़क़त मेरा मन चाहना जानता है।
फ़कीरों की बातें मैं कैसे समझूं,
फ़कीरों की बातें ख़ुदा जानता है।
वफाओं का दम लोग भरते हैं अब भी
वफा का वो लेकिन सिला जानता है।
सखावत के किस्से उसे मत सुनाओ
लुटेरा तो बस लूटना जानता है।

सुनीति बैस
सी 34
आर. के. पुरी
ठाटीपुर ग्वालियर
म.प्र.
मो.–09425757175

बना ही लेंगे कहीं न कहीं मकां अपना,
मिटा न पायेगा कोई कभी निशां अपना।
रहे जहां भी तो ख़ानाबदोश बनके रहें
बनाना चाहते हैं हम भी आशियां अपना।
सभी जहां में क्या मतलबपरस्त होते हैं
हमें दिखा ही नहीं कोई मेहरबां अपना।
कभी तो उसको भी दिखलाएं जख़्मे दिल अपना
बना लिया है जिसे हमने राजदां अपना।
हमें बताओ कि शाख के परिन्दे हैं
न जब ज़मीन ही अपनी न आस्मां अपना।

यह बस्तर खुद ही बोल रहा है

मैं अबूझ वनवासी बस्तरिया क्या बोलूं
यह बस्तर खुद ही बोल रहा है।
इसकी रहस्यमय कथा–व्यथा मैं क्या खोलूं
यह बस्तर खुद ही खोल रहा है।
वन में ही था ऋषि मुनियों का आश्रम
बस्तर में भी था उनका डेरा
है आदिकाल से सभी जानते
यह बस्तर खुद ही बोल रहा है।
बस्तर की भाषा हल्बी, गोंडी, दोरली
धुरवी, भतरी मैं क्या बोलूं
यह बस्तर खुद ही बोल रहा है।
वनवासी के गीतों पर,
पत्ते संगीत बजाते हैं।
झरनों के कलरव में देखो
पक्षी धुन मधुर मिलाते हैं।
सुन लोकगीत संगीत सुहावन
वन विचरित पशु भी गाते हैं।
यह बस्तर खुद ही बोल रहा है।
दुर्भाग्य है ऐसे पावन वन का
जो बना ढेर बारूदों का
यह बस्तर खुद ही बोल रहा है।
मैं अबूझ वनवासी बस्तरिया क्या बोलूं
यह बस्तर खुद ही बोल रहा है।

परिचय

द्रुतगति का मैं आशु कवि नहीं
फिर भी कविता लिखता हूं।
जिला कवर्धा का बाशिन्दा
कोण्डागांव में रहता हूं।
जल संसाधन का इंजीनियर
था नहर बांध बनवाता।
क्यूरिंग के बुलबुले संजोकर
लिखता हूं कुछ कविता।
गांव सहसपुर है लोहारा
कोण्डागांव में रहता हूं।
नाम मेरा एस. पी. विश्वकर्मा
जनम जात ही 'सृजेता' हूं।
जिला कवर्धा का बाशिन्दा
कोण्डागांव में रहता हूं।

मो.–9406335573

बसंत में आस

लौट आई हैं
सगुन–चिरैयां
घर के
कंगूरों पर
गुलमोहर की डालियां
छतरा गई हैं
आंगन–द्वारों पर
सिर उठाये खेत
बतियाते हैं
ढोर–डंगरों से
पंखा कर रही, पुरवाई
मन्द झकोरों से
शुरू हो गई है
रमई काका के
हुक्के की गुड़गुड़ाहट
लखमी चाची की
ऊरवल चक्की खटपट
बापू की आंखों की चमक
अम्मा ने देख ली है
बहुत आश्वस्त है वह
इसलिए शायद
बसंत, इस बरस
इस चौखट तक आयेगा
और बिटिया के हाथ
पीले कर जायेगा।

आनंद तिवारी पौराणिक
श्री राम टाकीज मार्ग
महासमुंद, छ.ग.
मो.–9753757489

बबूल वाले गांव

सकून को तलाशते बबूल बने गांव
बीहड़ों के रास्ते, बिवाई भरे पांव।
उदास मन हो गये, पलास के थे मन
कैक्टस से चुभ रहे, नीम वाले छांव।
मंजीरे, मृदंग ने खो दिये स्वर
मटमैली गंध पर, मौसम के दांव।
अमराई ढूंढ रही, पपीहे का गीत
कौओं का बसेरा है, बस कांव–कांव।
हादसों के रूदन–गान, चौपाल गा रहे
कतरा भर आंसू, बचा न कोई ठांव।
दुखों से भर गये, खलिहान, खेत
क्षत–विक्षत है झोपड़ी, बुझे हुए अलाव।
गंध थी अमोल, कभी मेरे गांव की
सरे–राह बिक गई, कौड़ियों के भाव।
होरी और धनिया, यह पूछते सवाल
हर निगाह कर रही, अपना बचाव।
कौन कहे ये भला, कब हुआ, क्यों हुआ
अपनों से अपनों का, इतना दुराव।
ईद और दीवाली, जहां मिलती थीं गले
कौन फिर दे रहा नफरत के घाव।

काव्य

तस्वीर

संतोष श्रीवास्तव
'सम'
बरदेभाटा, कांकेर
छ.ग.
मो.–9993819429

बहुत लोग मिले
जीवन में
मन को बहलाने
गम को,
गले लगाने।
बहुत लोग मिले
सुलगती जिन्दगी को
शीतल समीर देने
डूबती नाव की
पतवार थामने।
बहुत लोग
करने लगे कोशिश
पार पा जाऊं मैं,
उसी हंसी को
बहानों को पाऊं मैं,
पर तुम्हारी एक
तस्वीर ने
सभी को ढहा दिया
अश्रु से मुझे
भिगो दिया।

काव्य

बेटी का ब्याह

दिनेश विश्वकर्मा
कोण्डागांव
जिला–कोण्डागांव
छ.ग.
मो.–8463852536

गरीब पिता के लिए
होता है जीवन भर का स्वप्न
कई बार देखा इसके लिए
खेत बिकते, खलिहान बिकते
कई बार, खुद के अरमान बिकते।
क्योंकि पुत्री के रूप में
जन्म लेती है लक्ष्मी
कुंती का रहस्य, द्रौपदी का प्रतिशोध
सीता की पतिव्रता सती का हठ
शबरी की प्रतिक्षा, मीरा का समर्पण
जिनकी साधना में देखा
कई बार भगवान बिकते।
बेटियां जैसे सांस की डोर
जीवन के तम में, आशा की भोर
रसोई की रौनक, हंसता आंगन
कुटुम्ब की अस्मिता
इसलिए तो विदाई में
अनंत अश्रुओं की बूंद से भी
ऋण चुकाया नहीं जाता
जाने क्यूं, इस युग में सहज है
पर देखा नहीं जाता....
आधुनिकता के नाम पर
'नारी' का सम्मान बिकते।

ग़ज़ल

गोलियां अब भी चलती हैं, देर सबेर इस गांव में
उम्मीद कभी पार नहीं उतरती, छेद रह जाती नाव में।।
धोखे ही धोखे हासिल, आदिवासी भोले–भालों को
वादे ही वादे शामिल, अब के बरस चुनाव में।।
जाने क्या रंज लेकर घूमते, जंगल, घाटी, नदी, पर्वत
जाने कौन नमक छिड़कता है, उनके ताजे घाव में।।
सजे–धजे चेहरों ने दिखाया, गेड़ी, ककसाड़, गौर नृत्य
दुनिया ये भी देख पाती के, छाले पड़े थे पांव में।।
हमारे हित के नाम पर, कोरे कागज कारे भये
खेल ऐसा खेला गया, हम ही लगे थे दांव में।।
कोदो–कुटकी, सल्फी, मंडिया, बस इतना ही जीवन है
रक्तिम धरा हमारी क्यों, नील गगन की छांव में।।

ग़ज़ल

मेहनत–मजूरी की अंतहीन लड़ाई में
आमदनी उलझ गई सैकड़ा–दहाई में।।
कांधे तक उफनती नदी को पार कर
मरीज़ ढो कर लाते हैं चारपाई में।।
सल्फी का पेड़ बेटे को विरासत में
पॉलिश लगे जेवर, बेटी की विदाई में।।
दर्द है रोज का, जो पी जाती है जर्रा–जर्रा
मर्ज जो होता कोई राहत पा जाता दवाई में।।
आपने बढ़ा लिए, पगार किस्म–किस्म के
जाने कैसे हम जिए, हंस खेल कर मंहगाई में।

ईश्वर तेरे यह भी रूप

अंधेरा, प्रकाश, अभिमान वाणी।
का चल रहा था विचार–विनिमय गोष्ठी का दौर
कर रहे थे अपनी श्रेष्ठता का बखान
इशारा करके धरती के मानव की ओर।

कहता अंधेरा अपनी ही जुबानी
मेरी माया ही है अजब–गजब
जब आती मानवरूपी जीवन में अंधकार की बात
उजाला दिखे जीवन में उसके
भागता ईश की शरण से लेकर
जहां दिखती उजाले की आस।।

प्रकाश ने की अपने ही दिव्य ललाट से।
अपनी श्रेष्ठता का बखान
मैं आ जाऊं जिसके जीवन में
वह बन जाता महान
मेरी दिव्य चमक–दमक में
खो जाता इंसान
भूल जाता वो अपने पुराने दिन
कभी वो भी हुआ करता
भीतर से घायल मरणासन्न इंसान।।

अभिमानी अहंकारी तो था।
अपने ही मिजाज में
कहने लगा क्या करूं मैं मेरी महीमा का बखान
मैं आ जाऊं जिसके भीतर
उसे तुच्छ लगता हर सामनेवाला इंसान
कहती है दुनिया
अच्छे–अच्छों का नहीं रहा अभिमान
21 वीं सदी में विचरण कर रहा मैं
शतप्रतिशत कलयुगी मानव में
जो समझते खुद को महान।।

अहंकारी के बोल–वचन।
हुये जैसे ही समाप्त
मीठी वाणी वाले बोल पड़े नम्रता महाराज
मेरी तो बात ही निराली
मीठे बोल–वचन से ही
लुट गयी दुनिया बेचारी
राम–राज्य से ही कर लो मुझको याद
मीठे वचनों से ही मैंने छीन लिया
श्रीराम का राज
आज भी करता न कोई
जनता की भलाई के लिए काम
मीठे वचनों आश्वासनों की खैरात से
हर कोई कर रहा जनता का कल्याण।

मंद–मंद मुस्कराकर।
इनकी बातें सुन रहे थे
जगत के भाग्य विधाता
मेरे ही रचे हुए ये रूप
व्यर्थ ही कर रहे आपस में बहस
इन अज्ञानियों को क्या मैं समझाऊं
छल, कपट, नम्रता, अहंकार, अंधेरे, उजाले की दौड़ में
बता रहा कलयुगी मानव खुद को ही महान
समय के कालचक्र में
अभी समय है मुझको अवतरीत होने में
जब तक इंसानियत निश्चित तौर पर
खो देगा ये धरती का इंसान
ये धरती का इंसान।।

सतीश लखोटिया
601, भगवाघर काम्पलेक्स,
शुभमंगल कार्यालय के पास
धरमपेठ, नागपुर–10
मो.–9423051312

राही के दोहे

1–शोर करे मिटती नहीं, ओछेपन की धूल।
सच्चे कर्मों से खिले, कीचड़ में भी फूल।।
2–गंगा सबको दे रही, जीवन का संदेश।
पावन धारा स्वच्छ हो, कहता सारा देश।।
3–मीठी वाणी बोलिए, बेशक अलग विचार।
फिसले जैसे ही जुबां, हंसी उड़े संसार।।
4–खुश्बू अच्छे काम की, फैले थोड़ी देर।
नीयत से बरकत मिले, बेशक देर सबेर।।
5–बचपन पे हमला हुआ, मौन हुए अधिकार।
महावीर के देश में, बेबस मां का प्यार।।
6–गढ्ढ़ा खोदे और को, फिसले खुद गिर जाय।
आग लगाना सोचकर, हाथ नहीं जल जाय।।
7–सत्य सदा अविचल रहे, नहीं मचाए शोर।
आपे से बाहर वही, जिसके भीतर चोर।।
8–भ्रष्टाचार लुभा रहा, बदले अब आचार।
परिभाषित है झूठ अब, मर्जी के अनुसार।।
9–उत्तर भागा छोड़कर, प्रश्न हुए सब मौन।
सत्ता दुल्हनिया हुई, भ्रष्टाचारी गौण।।

राजेश जैन 'राही'
रायपुर
मो.–9425286241

प्राइवेट अस्पताल

एक पेशेन्ट, सर्दी–खांसी दिखाने
प्राइवेट अस्पताल आया
पांच सौ की फीस पटा
डाक्टर को दिखाया।
डाक्टर ने कहा, सर्दी के लिए
ई.एन.टी. को दिखाइये
खांसी के लिए
हार्टवाले के पास जाइये।
पेशेन्ट बेचारा क्या करता
फिर पांच सौ पटाया
ई.एन.टी. को दिखाया
डाक्टर ने नाक का एक्स रे किया
कहा दवाई बाद में देंगे
पहले हार्टवाले का रिपोर्ट लेंगे
हार्टवाले ने, ई.सी.जी./चेस्ट एक्स रे
लेकर बताया
आपकी बीमारी गंभीर है
ब्रेन को इफेक्ट कर सकती है।
जाइये न्यूरो सर्जन को दिखाइये।
पेशेन्ट बेचारा दौड़ता रहा
हर बार पांच सौ की फीस
भरता रहा।
न्यूरो सर्जन ने
पेशेन्ट का स्टेटस तौला
बोला
सी.टी.स्केन कराना पड़ेगा
जरूरत पड़ी तो
एम.आर.आई. लेंगे
सारे रिपोर्ट देखकर
दवाई देंगे।
पेशेन्ट घबराया
सारे टेस्ट कराया
रिपोर्ट देख, डाक्टर ने कहा
रिपोर्ट सभी नार्मल है
घबराने की बात नहीं है
ये दवाई ले जाइये
एक हफ्ते बाद आइये।

सरकारी अस्पताल

सरकारी अस्पताल
मत पूछिये हाल
डाक्टर, दस की जगह
बारह बजे आयेगा
दो घण्टे
राउण्ड लगायेगा
बाद में आया
चेम्बर में आसन जमाया
मरीज बेचारा
आठ बजे से बैठा है।
न जाने कितनी दूर से
आता है
डाक्टर का क्या जाता है।
यदि इण्डोर पेशेन्ट की
हालत देखने जायेंगे
तो सचमुच चकरायेंगे
कई पेशेन्ट
जमीन पर सो रहे हैं
और कई
दर्द के कारण रो रहे हैं
कई उल्टा लटक रहे हैं
तो कई इलाज के लिए
भटक रहे हैं।
स्टॉफ आ रहा है
जा रहा है।
स्ट्रेचर पेशेन्ट का
रिश्तेदार ला रहा है
एक्स रे मशीन बंद पड़ी है
पेशेन्ट से ज्यादा तो
मशीनों की समस्या बड़ी है।
कई अस्पतालों में
बेड हैं, पर पेशेन्ट नहीं
कई में पेशेन्ट हैं
पर बेड नहीं।
और कई में तो दोनों हैं
पर दवाई नहीं।
अजब हाल है
सब कुछ गोलमाल है
बजट करोड़ों आता है
पर पता नहीं
कहां जाता है
डाक्टर आपरेशन में
कपड़ा/पिन तक
छोड़ आते है
पता नहीं कितनी
लापरवाही कर जाते हैं
भाई साहब!
सरकारी अस्पतालों की
यही तस्वीर है
बच के आज जाय जो
तो उसकी तकदीर है।

डॉ. नथमल झंवर
झंवर निवास
मेन रोड
सिमगा
जिला–बलौदा बाजार
पिन–493101
मो.–9479107245

बस्तर पाति का अगला अंक लघुकथा विशेषांक होगा अतः लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी लघुकथाएं ई मेल अथवा पत्र द्वारा भेजें। व्हाट्एप के माध्यम से भी रचनाएं स्वीकार की जाती हैं। इसके लिए 9425507942 का प्रयोग करें।

सम्पादक बस्तर पाति

'साहित्य एवं कला समाज' एवं 'बस्तर पाति' के तत्वाधान में प्रतियोगिता आयोजित

अपने अटल प्रयोजन 'साहित्य को जन–जन तक पहुंचाना' को सार्थक करने के लिए शा.उ.मा.वि. रेल्वे कालोनी स्कूल जगदलपुर में विभिन्न विषयों पर कविता, लेख व कहानी प्रतियोगिता का सफल आयोजन किया गया। लगभग 500 बच्चों की क्षमता के स्कूल से 20 से 25 बच्चों ने भाग लिया और अपनी रचनाओं के माध्यम से सिद्ध कर दिया कि वे साहित्य को अपने कंधे पर लेकर चलने को तैयार हैं यदि कोई उन्हें मौका दें तो। बच्चों ने श्री जे.पी.दानी (वरिष्ठ कवि एवं संपादक सृजन संदेश), श्री सनत जैन (कहानीकार एवं संपादक बस्तर पाति) एवं श्री भरत गंगादित्य (हल्बी, छत्तीसगढ़ी कवि एवं मंच कलाकार) के मुख्य आतिथ्य में आयोजित सम्मान समारोह में अपनी रचनाओं का पाठ भी किया। श्रीमती पूर्णिमा सरोज (कवयित्री एवं शाला की अध्यापिका) ने मंच संचालन एवं कार्यक्रम आयोजन किया।

कविता के प्रथम विजेता कक्षा 10 के युग्रेस नेताम ने 'सड़क सुरक्षा' पर अपनी कविता लिखी। सड़क सुरक्षा अभियान का व्यापक हो संज्ञान/बाकी सबकुछ बाद में सर्वप्रथम प्राण।/नशे की हालत में कभी धारण न करें ड्रायविंग सीट/वरना इसके परिणाम भी हो सकते हैं विपरित।/सुन लो ये अनमोल वचन सदा सड़क पर रहे ध्यान। तेरा है एक परिवार, जिसकी बसी है तुझमें जान।

दूसरा स्थान प्राप्त कक्षा 10वीं के साहिल ने सड़क दुर्घटना' पर लिखा–

लापरवाही की तो होगी दुर्घटना, दुर्घटना से देर भली

कक्षा 9वीं की सुशीला ने 'रक्तदान' विषय पर कविता लिखी। इन्हें तीसरा स्थान प्राप्त हुआ।

तिनका–तिनका जोडकर उसने अभियान बनाया होगा
दाने–दाने के लिए तरबतर पसीना बहाया होगा।
धीमी गति से वाहन चलाएं, सुरक्षा कवच पहन कर चलाएं
हरी लाल बत्ती का पालन करें, दुर्घटना से अपने को बचाएं

निबंध प्रतियोगिता में बालेश्वर कक्षा 12वीं ने प्रथम स्थान पाया। उन्होंने महत्वपूर्ण बात यह बताई कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली महंगी है और इसमें श्रम का स्थान नहीं होता है। आज का युवक शिक्षा के बाद सीधे नौकरी चाहता है, जो मैकाले की देन है। नवयुवक बेरोजगार न हों वह स्वावलंबी बने। शिक्षा के प्रति कलाम के शब्द हैं–अगर आप फेल हो गये हों तो कभी निराश मत होना, क्योंकि फेल का मतलब होता है फर्स्ट अटैम्प इन लर्निगं। और इंड कभी अंत नहीं होता बल्कि इंड का मतलब होता है–इफोर्ट नेवर डाईस।

दूसरा स्थान पाया कक्षा 12वीं की कु. मनीता ओगर ने। विषय था 'सड़क दुर्घटना का जिम्मेदार कौन'। उन्होंने इसके कारण ढूंढे–यातायात नियमों की अवहेलना, यातायात से संबंधित अधिकारियों कर्मचारियों की लापरवाही, जनसंख्या के अनुपात में अनुपयुक्त सड़कें, शहरीकरण के अनुरूप सड़कों के विकास का अभाव, वाहनों की अनवरत वृद्धि, वाहनों पर क्षमता से अधिक भार, मोटर गाड़ियों के समुचित रखरखाव न होने के कारण, अनुभवहीनता एवं लापरवाही, वाहन चालकों में प्रतिस्पर्धा।

तीसरा स्थान पाने वाली झरना साहू जो कक्षा 12 वीं में अध्ययनरत हैं शिक्षा का महत्व पर अपना लेख लिखा। प्रस्तावना में लिखा कि शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत मनुष्य का संतुलित रूप से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास होता है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य निर्धारित होता है। आज के युग में बिना शिक्षा के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है।

इस आयोजन में श्रीमती पूर्णिमा सरोज का पूरा योगदान रहा। उन्होंने ही अपनी शाला के प्राचार्य से अनुमति हासिल कर विभिन्न प्रतियोगिताएं आयोजित करीं। वे साहित्य एवं कला समाज की कोषाध्यक्ष भी हैं। शाला के प्राचार्य व अन्य शिक्षकों का पूर्ण सहयोग व उत्साह प्रशंसा के काबिल था।

साहित्य एवं कला समाज द्वारा विद्यार्थियों से नवीन और जीवनोपयोगी विषयों पर लिखवाया गया। ये ऐसे विषय थे जिन पर विचार कर किया गया लेखन स्वयं के लिए जीवन भर काम आयेगा। विषय थे मोबाइल, सड़क दुर्घटना, रक्तदान और शिक्षा नौकरी के लिए जरूरी है या अच्छे जीवन के लिए। इन विषयों पर जम कर विद्यार्थियों ने लिखा।

यूग्रेस

बालेश्वर

सुशीला

साहिल

सरला साहू

मनीता ओगार

नक्कारखाने की तूती

यह शीर्षक हमारे उन विचारों के लिए है जो लगातार हमारा दम घोंटते हैं परन्तु हम उन्हें आपस में ही कह सुन कर चुपचाप बैठ जाते हैं। चुप बैठने का कारण होता हैं हमारी 'अकेला' होने की सोच! इस सोच को तड़का लगता है इस बात से कि 'सिस्टम ही ऐसा है क्या किया जा सकता है, और ऐसा सोचना पागलपन है।' हर पान की दुकान, चाय की दुकान और ट्रेन के सफर में लगातार होने वाली ये हर किसी की समस्या होती है, ये चिन्ता हर किसी की होती है। और सबसे बड़ी बात कि समस्या का हल भी वहीं होता है। ऐसी समस्या और उसका हल जो दिमाग को मथ कर रख देता हैं उनका यहां स्वागत हैं। तो फिर देर किस बात की कलम उठाईये और लिख भेजिए हमें।

बस्तर की विकास की बातें करने वालों के साथ एक बड़ी दिक्कत यह है कि उन्हें आदिवासियों से गहरी सहानुभूति है उनका शोषण देखकर आंखे द्रवित हो जाती हैं वे तत्काल उनके विकास की कार्य योजना का खाका खींचने लग जाते हैं। वे उनके अमचूर, इमली, चार, लकड़ी आर्ट आदि का सही मूल्य दिलाने को दौड़ पड़ते हैं। स्व सहायता समूह बनाने की, सरकारी खरीद की बातें करने लगते हैं तो कुछ उनके लिए सरकारी आयोजन की बातें करते हैं। जहां उनकी कला संस्कृति का प्रदर्शन हो, बिक्री हो। इन बातों से उनके आदिवासियों के हिमायती होने पर कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लगा रहे हैं। वे सच्चे हिमायती बने नजर आ रहे हैं पर क्या ये सच है ? इसका दूसरा पहलू क्या है ? क्या सोच है इस हिमायती सोच के पीछे ?

(1) सरकार की ये सोच की शिक्षा और विकास की दर कम रखी जाये जिससे पढ़े लिखों की फौज उनके सत्ता में बने रहने पर अवरोध न बने।

(2) आदिवासी जन्म जन्मांतर तक अमचूर, इमली बनाते तोड़ते रहें ? दूसरे शब्दों में कहें कि वनोत्पाद के संग्रह की व्यवस्था बनाये रखने के लिए ग्रामीण जीवन तहस नहस नहीं किया जा रहा है।

(3) हम उनके आर्ट जो कि उनके जीवन की सांस्कृतिक पलों के चित्र होते हैं, खरीदकर उन्हें यह संदेश नहीं दे रहे हैं कि यही तुम्हारा जीवन है। ऐसा जीवन जीते रहो अच्छा लगता है।

(4) हम उन्हें इन रोज कमाकर रोज खाने वाली जिन्दगी से हटाकर विकसित करना ही नहीं चाहते हैं। इन्हें इन छोटी–छोटी उपलब्धियों को दिलाकर उनके हिमायती हैं, बताना भी चाहते है। वास्तविक विकास करना भी नहीं चाहते है।

ये कुछ बिन्दु हैं जिन्हें उल्टी सोच वाला बताया जा सकता है परन्तु यह एक सच है। यदि हम वनोत्पाद को दोहन करना चाहते हैं तो हम इसे उद्योग का दर्जा देकर तगड़ा रेट दिलवायें। वे कहते हैं जल, जंगल, जमीन उनके हैं तो हम उनके अधिकारों के पक्षधर हो जाते हैं। हम विकास का पूरा आनंद उठातें हैं तो उनके हिस्से उनके अधिकार स्वरूप गरीबी क्यों छोड़ देते हैं ?

वे अपने अधिकारों के नाम पर छले जा रहे हैं उन्हें विकसित क्षेत्र की आबोहवा सुधारने और जलापूर्ति बनाए रखने के एवज में मूलभूत सुविधाएं मुफ्त में क्यो नहीं दी जाती हैं ?

वास्तविकता में हम स्वार्थी बनकर उनके हिमायती होने का ढोंग करते हैं और उनके प्रति अपने कर्तव्यों को छिपाते हैं, उनका दोहरा शोषण करते हैं।

बुद्धिजीवियों ने यहां की वास्तविक धरातल में बस्तर के आदिम क्षेत्र को आजादी के बाद से अपनी रहस्यमयी और अक्षुण्ण बनाये रखा या बल्कि यूं कहें कि इस पहचान को अक्षुण्ण बनाये रखने में हम सभी की सक्रिय भूमिका निरंतर बनी रही। यहां की आदिम संस्कृति के बचाव के नाम पर उन्हें गरीबी में जीने के लिए मजबूर कर दिया गया।

टीवी के आविष्कार एवं पंचायती राज के बाद दुनिया के विकास की आबोहवा अंदर अंदर तक गई। अब यही आदिवासी समाज कुंठाग्रस्त होता जा रहा है। अपने विकास की अवरूद्धता की वजह से उन्हें भी महसूस हो रहा है कि उन्हें अभ्यारण्य का हिस्सा बनाये रखा गया है। उन्हें भी मोटर साइकल और सड़क का महत्व मालूम होने लगा है। इस खुलेपन के हिमायती होने के दौर में अब इन आदिवासियों को विकास की हवा के स्पर्श से रोका नहीं जा सकता है। यहां का हर पढ़ा लिखा अपने (आदिवासी) और अन्य के बीच विकास की दूरी से अचंभित और बौखलाया हुआ है। इस संक्रमण के दौर ने भले ही कुछ न सिखाया हो पर एक बात भलीभांति बता दी है कि जितनी भी जल्दी हो सके उतनी जल्दी स्वयं का विकास करना है इसके लिए माध्यम की शुचिता का कोई मतलब नहीं है।

वर्तमान दौर में पुरानी तरह का साहित्य/समाचार नहीं लिखा/बताया जा रहा है। वास्तविकता से परे इन्टरनेट के भीतर भरे तथ्यों को मन मुताबिक हेर फेर के साथ परोसा जा रहा है। साहित्य/या लेखन की किसी भी विधा के शक्ति का अंदाजा हर लिखने वाले को तो नहीं है पर घोर सत्य है

तभी तो कापी पेस्ट के साथ नमक मिर्च का घालमेल जारी है। दिल्ली/भोपाल वाले बस्तर के नीति नियंता बन बैठे हैं। जो बस्तर एक बार आकर चित्रकोट, तीरथगढ़ वाटरफॉल, और कुटुम्बसर गुफा देख लेता है वही बस्तर का मर्मज्ञ बन जाता है। बस्तर के संबंध में धरातलीय जानकारी उन्हें दी जाये जो बुद्धिजीवी हैं और ठोस कार्य करते हैं। यहां पर आने के बाद बस्तर को भौतिक रूप से देखना और कलाकृतियों के माध्यम से समझना, क्षेत्र में असमानता का तानाबाना समझना, बहुत जरूरी है, सौ बुद्धिजीवियों में से पचास भी बस्तर के संबंध मे कविता, कहानी, लेख के माध्यम से कुछ लिखते हैं तो बुद्धिजीवी समाज की मानसिकता बदलेगी और बस्तर की छवि में परिवर्तन आयेगा। हम चाहते हैं कि यह विचार किया जाय कि इस क्षेत्र को विकास से अछूता क्यों रखा गया है ?

क्यों इस क्षेत्र को देशभर के लिए ऑक्सीजन जोन बनाया जा रहा है ? यदि ऑक्सीजन जोन बनाया भी गया है तो क्या यहां के बाशिंदो को उसके लिए मुआवजा दिया जा रहा है ? यहां से बाहर ले जाकर उन्हें उच्च शिक्षा, नौकरी दी जा रही है ? अनेक प्रश्न हैं।

अभी जिन्होंने बस्तर देखा है उन्होंने यहां की छवि ऐसी गढ़ी है मानो बस्तर का विकास किया गया तो अनर्थ हो जायेगा यहां के मूल निवासियों का सांस्कृतिक चक्र बैठ जायेगा। बड़े ही अचरज की बात है कि यह क्षेत्र विकास से कैसे अछूता है जबकि देश का मध्य क्षेत्र है। इन्हीं विषयों पर यहां का बुद्धिजीवी वर्ग दिमाग तोड़ परिचर्चा क्यों नहीं करता जिसके माध्यम से बाहर से आये बुद्धिजीवियों की कलम कुछ बोले।

फार्म–4

प्रेस तथा पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा 19 डी के अंतर्गत अपेक्षित 'बस्तर पाति' नामक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरणः–

1. प्रकाशन का स्थान–	सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
2. प्रकाशन की आवर्तता–	त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम–	सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	हां
4. पता–	सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
5. प्रकाशक का नाम–	सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	हां
5. सम्पादक का नाम–	सनत कुमार जैन
क्या भारतीय नागरिक है?–	हां
पता–	सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.
6. उन व्यक्तियों के नाम और पते, जो पत्रिका के मालिक और कुल प्रदत्त पूंजी के एक–एक प्रतिशत से अधिक के हिस्सेदार या भागीदार हैं–	सनत कुमार जैन सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर छ.ग.

मैं सनत कुमार जैन, एतद् द्वारा घोषणा करता हूं कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार उपयुक्त विवरण सही हैं। **सनत कुमार जैन**

प्रकाशक/मुद्रक/सम्पादक/स्वामी

पत्रिका मिली

दिवान मेरा
सम्पादक–नरेन्द्रसिंह परिहार
मूल्य–20 रूपये
पता–सी004, उत्कर्ष अनुराधा, सिविल लाईन्स
नागपुर–440001
संपर्क–09561775384

अविराम साहित्यिकी
सम्पादक–डॉ.उमेश महादोषी
मूल्य–25 रूपये
पता–121इन्द्रापुरम, बीडीए कालोनी के पास, बदायूं रोड, बरेली उ.प्र.
संपर्क–09458929004

नेता तू दया करके/चमचा मुझे बना लेना।

विराट उल्लू सम्मेलन जगदलपुर शहर में एक नई उत्तेजना के साथ बरसों तक याद किया जाने वाला कार्यक्रम साबित होगा। यह आयोजन बस्तर क्षेत्र के नये और पुराने कवियों को आम जनता के बीच अपनी पहचान साबित और स्थापित करने का माध्यम बना। उनकी छवि राष्ट्रीय स्तर के कवियों से कहीं कम नहीं, रात्रि बारह बजे तक उपस्थित जनता ने तालियां बजाकर साबित कर दिया। शशांक श्रीधर ने उल्लू के पट्ठे मुहावरे का विश्लेषण कर दर्शकों को समझाया कि हर घर में एक उल्लू विराजमान है। सनत जैन ने उल्लूराज की प्रगति के लिए नारे लगवाये कि खीर पूड़ी खायेंगे/ बेईमानी का राज लायेंगे।

उल्लूराज की स्थापना में छ.ग. वन विकास निगम के अध्यक्ष श्री श्रीनिवास मद्दी जो कि कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे, 'उल्लूराज' में उन्हें वड़ा–पाव मंत्रालय प्रदान किया गया। उन्होंने अपना मंत्री पद संभालते ही बस्तर क्षेत्र में अनेक टैक्सफ्री वड़ापाव आउटलेट खोलने का आश्वासन दिया। शहर के महापौर श्री जतीन जायसवाल जी ने गुपचुप मंत्रालय की बागडोर संभालते ही महिलाओं को दस रूपये में बीस गुपचुप देने की योजना की घोषणा की। सुभाष वार्ड के स्मार्ट और एक्टिव पार्षद श्री रजनीश पानीग्राही ने अपना इश्क मंत्रालय बड़ी खुशी के साथ संभाला और इश्क को टैक्सफ्री कर दिया। पार्षद श्री यशवर्द्धन यशोदा को गढ्ढा मंत्रालय संभालने की जिम्मेदारी दी गई तो उन्होंने लोगों के दिलों के बीच गढ्ढों को पाटने की गंभीर बात कह दी। सर्वधर्म समाज के अध्यक्ष श्री रमेश जैन को उद्घाटन मंत्रालय की बागडोर दी गई। उन्होंने उल्लूराज के विकास के लिए अनेक नयी योजनाओं की घोषणा की। सर्व धर्म सामज के उपाध्यक्ष श्री सुधीर जैन ने अपने मंत्रालय के तहत अनेक घोषणायें की। बस्तर परिवहन संघ के अध्यक्ष श्री शक्तिसिंह को नशा मंत्रालय दिया गया तो वे खुशी से फूले न समाये और अपने मंत्रालय के माध्यम से सबसे ज्यादा राजस्व प्राप्ति की उपलब्धि गिनाई। श्री मनीष गुप्ता ब्यूरोचीफ नवभारत ने भी उल्लूराज में अपना मंत्रालय प्राप्त किया।

इसके बाद गरिमामय हास्य कवि सम्मेलन की शुरूआत शशांक शेण्डे ने अपने मंच संचालन के साथ की। श्रीमती रीना जैन ने अपने मधुर कंठ से होली गीत सुनाया–बिन होली के होली खेलो /चेहरे पर मलो गुलाल। भरत गंगादित्य की हल्बी कविता कुकुरगति पर उपस्थित जनसमुदाय ने भरपूर मजा लिया। गति गति कयक गति, मांतर गोटोक अऊर गति आय–कुकुरगति। कोण्डागांव से आये महेन्द्र जैन ने अपने हास्य रस के दोहों से हंसी का माहौल पैदा कर दिया।–जिसके दो पत्नी का पति होय, सिर पर हो बला/ एक बैठे नोट दबाये, दूसरी दबाये गला। नवोदित कवि बी.एल.सारस्वत ने नेताओं कटाक्ष करते हुए कहा कि मैं नेता हूं, मैं नेता हूं/ देता नहीं लेता हूं।

बचेली से पधारी शकुनतला शेण्डे ने अपनी प्यारी और मधुर आवाज में शमा बांध दिया और कार्यक्रम में जमकर तालियां बटोरी। बंजर न हो ये जमीं, बागान बना दे।/ मेरे खुदा तू इंसान को इंसान बना दे। मूलतः जांजगीर के रहने वाले और वर्तमान में बीजापुर में तहसीलदार के पद पर सुशोभित देवधर महंत जी ने ग़ज़ल को अपनी विशिष्ट शैली में प्रस्तुत कर शहर वासियों का दिल जीत लिया। पत्थर हृदय गलाकर लिखते हैं/ हम तन मन पिघलाकर लिखते हैं/आंसू और पसीने की क्या जरूरत/ हम तो लहू जलाकर लिखते हैं। राम बरन कोरी ने अपनी हज़ल यानी हास्य ग़ज़ल से तालियों का ट्रक अपने नगर भिलाई लेकर गये। बानगी देखिए– नजरें मिली क्या, गुनाह हो गया/ दो चार दिनों में तबाह हो गया।/ किसी से कुछ छुपाने की जरूरत नहीं दोस्तों/सर के बालों का उड़ना गवाह हो गया। कोण्डागांव से आये हरेन्द्र यादव ने अपने लिए आकर्षक ढंग से तालियां बटोरी। कितनी तालियां बजवाओगे।/ क्या भोपाल की सैर करवाओगे/ और हम तो अपने को समझे थे शोला/ क्या अब शबनम मौसी बनवाओगे। इसके बाद डॉ कौशलेन्द्र ने वर्तमान परिस्थितियों को जोड़कर बताया कि ठगी गयी विद्यामन्दिर में, भारत की सरकार /आजादी के वेश में लेता, अपसंस्कार आकार /मर्यादा स्वीकार नहीं, आदर्श बना व्यभिचार /वैलेंटाइन पे, नथुनी उतार गयी रे !/ जेएनयू वाली आ के नैना मार गयी रे। जे पी दानी ने अपना किस्सा सुनाया कि किस तरह उन्हें डाक्टर ने कुत्ता साबित कर दिया। सुरेश चितेरा ने अपनी कविता जब घर के लोग बाहर होते हैं/ तब दरवाजे के दोनों पल्ले आपस में गले मिलकर रोते हैं सुनाकर अपने लिए वाहवाही लूटी। विमल तिवारी ने वनवासी–वनवासी की पैरोडी सुनाकर दर्शकों को हंसाया। पूर्णिमा सरोज ने होली पर आधारित अपनी कविता का पाठ किया।

साहित्य एवं कला समाज द्वारा आयोजित कार्यक्रम

साहित्य एवं कला समाज द्वारा लगातार अपनी उपस्थिति शहर के साहित्यिक परिदृश्य में बनाये रखी। 6 दिसम्बर 15 को बस्तर पाति प्रकाशन से प्रकाशित तीन पुस्तकों का विमोचन हुआ। उसके बाद 17 दिसम्बर 15 को बस्तर के साहित्यपिता श्री लाला जगदलपुरी की जंयति मनाई गई।

यह जयंति कार्यक्रम अभूतपूर्व था। इसमें शहर की नाट्य संस्थाओं ने भी अपनी सहभागिता निभाई। बी.एल.विश्वकर्मा (आकृति कला एवं साहित्य संस्था), सनत जैन (बस्तर पाति, साहित्य एवं कला समाज) के आयोजन 'लाला जगदलपुरी जन्म समारोह–2015' में उपस्थित बौद्धिक जनसमूह ने जता दिया कि लाला जगदलपुरी जी आज के जनमानस में भी आकर्षण के केन्द्र हैं, उनके संदर्भ में जानना और उनके योगदान को समझना हर किसी की दिली इच्छा है। दण्डकारण्य समाचार पत्र के स्वामी एवं प्रधान संपादक श्री तुषारकांति बोस, वरिष्ठ साहित्यकार श्री जयचंद्र जैन, महिला सरोकार की वरिष्ठ कवयित्री एवं प्राचार्या बस्तर हाई स्कूल श्रीमती सुषमा झा कार्यक्रम के मंचस्थ अतिथि थे। श्री जी.एस. मनमोहन ने अपनी मधुर आवाज और अपने साहित्यिक गांभीर्य से मंच संचालन करते हुए अपना सहयोग प्रदान किया। कार्यक्रम में चिरस्मरणीय लालाजी के परिवार से उनके पुत्रवत श्री विनय श्रीवास्तव सपरिवार उपस्थित थे।

अतिथियों का परिचय दिया गया एवं स्वागत श्री बी.एल.विश्वकर्मा, श्री सनत जैन, श्री सुभाष पाण्डे ने पुष्पाहार से किया। इसके उपरांत लालाजी के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर श्रीमती सुषमा झा, श्री तुषारकांति बोस, श्री एस के श्रीवास्तव एवं श्री एम.ए. रहीम ने प्रकाश डाला। कार्यक्रम की दूसरी कड़ी में श्री हरिहर वैष्णव द्वारा लिखित एवं श्री सुभाष पाण्डे द्वारा निर्देशित हल्बी नाटक 'बांडा बाघ' का मंचन किया गया। इस नाटक के प्रतिभागी थे श्री नरेन्द्र पाढ़ी, श्रीमती सुन्दरा सिम्हा, श्री विक्रम सोनी, श्री बलबीर सिंह कच्छ और खुद श्री सुभाष पाण्डे। उपस्थित समस्त जनों की तालियों ने नाटक की सफलता बयान कर दी। कार्यक्रम के तीसरे चरण में काव्यगोष्ठी थी जिसका श्री अवध किशोर शर्मा जी ने अपने दोहो के माध्यम से कुशल संचालन कर श्रोताओं का मन मोह लिया। काव्यपाठ करने वाले कवि थे श्रीमती मोहिनी ठाकुर, श्रीमती शकुनतला शेण्डे (बचेली), श्रीमती पूर्णिमा सरोज, श्री सुरेश विश्वकर्मा, श्री नूर जगदलपुरी, श्री ऋषि शर्मा ऋषि, श्री राजेश थनथराटे, श्री शशांक शेण्डे, श्री विमल तिवारी, श्री चंद्रेश शर्मा, श्री नरेन्द्र यादव श्री रूपेन्द्र कवि, श्री अवध किशोर शर्मा, श्री जोगेन्द्र महापात्र जोगी, श्री नरेन्द्र पाढ़ी आदि थे। अन्य उपस्थित साहित्यकारों के नाम इस तरह हैं– डॉ योगेन्द्र सिंह राठौर, श्रीमती वंदना राठौर, श्री शरद चंद्र गौड़, श्री हिमांशु शेखर झा, श्री भरत गंगादित्य, श्री वसंत चव्हाण, श्रीमती गायत्री आचार्य, श्रीमती प्रीतम कौर, श्रीमती सरिता पाण्डे, श्रीमती अलवेनी राव, श्रीमती ममता जैन कादम्बरी संस्था से भी अनेक महिला समाज सेवियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। वरिष्ठ रंगमंच निर्देशक श्री खुर्शीद खान एवं फोटोग्राफर श्री शैलेष यादव भी उपस्थित थे।

बस्तर पाति–साहित्य सेवा

''बस्तर पाति'' मात्र पत्रिका प्रकाशन ही नहीं है बल्कि इस क्षेत्र का साहित्यिक दस्तावेज है। हम और आप मिलकर तैयार करेंगे एक नई पीढ़ी; जो इस क्षेत्र का साहित्यिक भविष्य बनेगी। मिलजुलकर किया प्रयास सफल होगा ऐसा विश्वास है। हमें करना यह है कि लोगों के बीच जायें उनके बीच साहित्यिक रूचि रखने वाले को पहचाने और फिर लगातार संपर्क से उन्हें लिखने को प्रेरित करें। उनके लिखे को प्रकाशित करना ***''बस्तर पाति''*** का वादा है। रचनाशील समाज रचनात्मक सोच से ही बनता हैं, ये सच लोगों तक पहुंचाने के अलावा रचनाशील बनाना भी हमारा ही कर्तव्य है। लोक संस्कृति के अनछुए पहलूओं के अलावा जाने पहचाने हिस्से भी समाज के सम्मुख आने ही चाहिये। आज की आपाधापी वाली जिन्दगी में मानव बने रहने के लिए मिट्टी से जुड़ाव आवश्यक है। खेत–किसान, तीज–त्यौहार, गीत–नाटक, कला–संगीत, हवा–पानी आदि के अलावा घर–द्वार, माता–पिता से निस्वार्थ जुड़ाव की जरूरत को जानते बूझते अनदेखा करना, अपने पांवों कुल्हाड़ी मारना है, इसलिए हमारी सोच के साथ जीवन में भी साहित्य का उतरना नितांत आवश्यक है। साहित्य मात्र कुछ ही पढ़े–लिखे लोगों की बपौती नहीं है बल्कि लोक की सम्पदा है इसलिए सभी गरीब–अमीर, पढ़े–लिखे लोगों को जोड़ने की बात है। कला की प्रत्येक विधा हमें मानव जीवन सहेजने की शिक्षा देती है। हां, ये अलग बात है कि हम उसे समझना चाहते हैं या फिर समझाना नहीं चाहते हैं। लोक जीवन, लोक संस्कृति और लोक साहित्य, इन सभी में एक ही विषय समाहित है, एक ही आत्मा विराजमान है, इसलिए किसी एक पर बात करना ही हमें मिट्टी से जोड़ देता है, हमें मानव बने रहने पर मजबूर कर देता है।

मेरा निवेदन है कि हम अपने क्षेत्र के लोगों को ***''बस्तर पाति''*** से जोड़ें और उन्हें अपनी रचनात्मक भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करें। ***''बस्तर पाति''*** के पंचवर्षीय सदस्य बनकर इस साहित्यिक आंदोलन के सक्रिय सहयोगी बनें। ***''बस्तर पाति''*** को मजबूत बनाने के लिए आर्थिक आधार का मजबूत होना आवश्यक है। इस छोटी–सी किरण को सूरज बनना है और आप से ही संभव है, इसलिए रचनात्मक सहयोग के साथ ही साथ आर्थिक सहयोग प्रदान करते हुए आज ही पंचवर्षीय सदस्य बनें। अपने मित्रों को जन्मदिन और सालगिरह पर उपहार स्वरूप पंचवर्षीय सदस्यता दें। याद रखें, ज्ञान से बड़ा उपहार हो ही नहीं सकता है। हमारा पता है–

सदस्यता फार्म

मैं ***''बस्तर पाति''*** हिन्दी त्रैमासिक का पंचवर्षीय सदस्य बनना चाहता हूं। कृपया मुझे सदस्य बनायें। मेरा नाम व पता निम्नानुसार है–

नाम–.....

पता–.....

.....

.....

.....

शिक्षा–.....**अन्य जानकारी**.....

.....

मोबाइल नं.–.....**ईमेल**.....

500/– (रूपये पांच सौ) नगद/ मनीआर्डर / अकाउंट नंबर 10456297588 एसबीआई जगदलपुर (आईएफएस कोड 00392) द्वारा भेज रहा हूं। दिनांक–

हस्ताक्षर

प्रति,

''बस्तर पाति''
साहित्य एवं कला समाज
सन्मति गली, सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर जिला बस्तर छ.ग. पिन–494001
मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

बस्तर पाति के लिए विज्ञापन दर

पत्रिका में स्थान (मल्टीकलर)	***दर प्रति अंक***
पिछला पेज	
पूरा	***10000/–***
आधा	***5000/–***
पिछले से पहला	
पूरा	***5000/–***
आधा	***3000/–***
मध्य के दो पेज पूरे (ब्लैक एण्ड व्हाइट)	***20000/–***
भीतर के पेज में कहीं भी	
पूरा	***2000/–***
आधा	***1000/–***
एक चौथाई	***500/–***
सभी पेज में नीचे एक लाइन की विज्ञापन पट्टी	***10000/–***

ध्यान रखिए, आपका सहयोग साहित्य एवं हिन्दी के प्रसार में उपयोग होगा।

कविता का रूप कैसे बदलता है देखें जरा। नये रचनाकार ने लिखा था, नवीन प्रयास था इसलिए कसौटी पर खरा नहीं उतरा। उसी कविता को कैसे कसौटी पर खरा उतारें–

कुंआ

कुंआ हमेशा आबाद रहता है
गांव का हर घर वहां आता है
यदि कोई बीमार हो तो
पता चल जाता है वहां आते ही
किसी की लड़की का ईश्क
यहां पर आकर ही दुनिया में आता है
तो किसी अवैध गर्भ का बाप
यहां खोजा जाता है।
किसी विधवा को यहीं पर
टोनही साबित कर दिया जाता है
गांव की सुन्दर औरत यहीं पर
व्याभिचारिणी घोषित होती है
यही वह जगह है जहां
सास और ननद मिलकर
कुंअें के पास फिसलन पैदा करती हैं
और दहेज की बली वेदी तैयार करती है।

यही कविता कुछ अन्य पंक्तियां जोड़ने पर देखें कैसे रूप बदलकर रोमांचित करती है–

कुंआ

कुंआ हमेशा आबाद रहता है
गांव का हर घर वहां आता है
यदि कोई बीमार हो तो
पता चल जाता है वहां आते ही
किसी की लड़की का ईश्क
यहां पर आकर ही दुनिया में आता है
तो किसी अवैध गर्भ का बाप
यहां खोजा जाता है।
किसी विधवा को यहीं पर
टोनही साबित कर दिया जाता है
गांव की सुन्दर औरत यहीं पर
व्याभिचारिणी घोषित होती है
यही वह जगह है जहां
सास और ननद मिलकर
मुंडेर के पास फिसलन पैदा करती हैं
और दहेज की बली वेदी तैयार करती है।
गांव के कुंअे का साथ देता है
गांव का बरगद।

भूख

मैं अच्छी तरह जानता हूँ, हजूर
भूख नहीं महसूस कर सकते आप
आप नहीं जान सकते इसका दर्द
अपनी भूख से अधिक इस बात का दुःख
कि दुधमुँहा पी रहा मांड
दूसरे बच्चे के जनते ही
सूख गई है छाती
बस बहलाने के लिए
सटा देती है उसका मुँह
धिक्कारती है खुद को
इससे अच्छी कुतिया है मेरी
पोस रही है मजे में
पांच –पांच पिल्लों को
एक साथ।
हजूर भूख तो आपके पास
झाँकने भी नहीं आती
कर लेती है रास्ता
हमारे टोले का
जहाँ बारह बजे के बाद ही
होता है कुल्ला
ताकि खराई न मारे।
उसी टोले में
जहाँ जलता है चूल्हा
एक बार ही
और रह जाता उपास
रह–रह कर
हर बाप बस इसी जुगत में
किसी तरह
भूखे बच्चे की रुलाई
गली तक न पहुंचे
और माँ/सिंझा कर सागपात
करती उपाय
उतर आए दूध स्तन में
पीकर हो जाए अगम
लेकिन हजूर
हद तो तब हो गई
जब पेट के गड्ढे में बैठे
मेरे बेटे ने
आपकी अटारी पर
उतर आए चाँद को देखकर कहा
रोटी–रोटी!

श्री ब्रजेश कुमार पांडेय की वॉल से

बस्तर पाति को मूर्तरूप देने वाले सहयोगी

संस्थापक सदस्यः–

श्री एम.एन.सिन्हा, दल्ली राजहरा छ.ग.
श्री आशीष राय, जगदलपुर, छ.ग.
श्री अमित नामदेव, रायपुर, छ.ग.
श्री गौतम बोथरा, रायपुर, छ.ग.
श्री कमलेश दिल्लीवार, रायपुर, छ.ग.
श्री सुनील अग्रवाल, कोरबा, छ.ग.
श्री संजय जैन, भाटापारा, छ.ग.
श्रीमती ममता जैन, जगदलपुर, छ.ग.
श्री सनत जैन, जगदलपुर, छ.ग.

परम सहयोगीः–

श्रीमती उषा अग्रवाल, नागपुर
श्री शशांक श्रीधर, जगदलपुर
श्री महेन्द्र जैन, कोण्डागांव
श्री आनंद जी. सिंह, दंतेवाड़ा
श्री विमल तिवारी, जगदलपुर
श्री उमेश पानीग्राही, जगदलपुर

सदस्यः–श्रीमती जयश्री जैन, श्रीमती रचना जैन, शमीम बहार, मनीष अग्रवाल जगदलपुर, श्याम नारायण श्रीवास्तव रायगढ़, श्रीमती अशलेषा झा, नलिन श्रीवास्तव राजनादगाव, ऋषि शर्मा 'ऋषि', बीरेन्द्र कुमार मौर्य जगदलपुर, टी आर साहू दुर्ग, श्रीमती गुप्तेश्वरी पाण्डे जगदलपुर, श्रीमती बरखा भाटिया कोण्डागांव, निर्मल आनंद कोमा, राजिम, कांति अरोरा बिलासपुर, राजेन्द्र जैन भिलाई, मिश्रा जी, नूर जगदलपुरी जगदलपुर, हरेन्द्र यादव कोण्डागांव, महेन्द्र यदु कोण्डागांव, एस.पी.विश्वकर्मा कोण्डागांव, सुश्री उर्मिला आचार्य जगदलपुर, श्रीमती प्रभाती मिंज बिलासपुर, श्रीमती सोनिका कवि, जितेन्द्र भदोरिया जगदलपुर, आर.बी. तिवारी महासमुंद, मे. होटल रेनबो जगदलपुर, संजय मिश्रा रायपुर, इश्तियाक मीर जगदलपुर, सोनिया कुशवाह, श्रीमती पूर्णिमा सरोज रूपाली सेठिया, राजेश श्रीवास्तव, महेन्द्र सिंह ठाकुर, चंद्रशेखर कच्छ, मे.पदमावती किराना स्टोर्स, दिलिप देव, तृप्ति परिडा, धरमचंद्र शर्मा, हेमंत बघेल जगदलपुर जी.एस. वरखड़े जबलपुर, लक्ष्मी कुडीकल जगदलपुर, अनिल कुमार जयसवाल भिलाई, वीरभान साहू रायपुर, प्रीतम कौर, मनीष महान्ती, प्रणव बनर्जी, शेफालीबाला पीटर, यशवर्धन यशोदा, शरदचंद्र गौड़, सुरेश विश्वकर्मा श्रीमती शांती तिवारी, विनित अग्रवाल, एन.आर. नायडू, श्रीमती मोहिनी ठाकुर, जयचंद जैन, कुमार प्रवीण सूर्यवंशी, भरत गंगादित्य, मिनेष कुमार जगदलपुर, शिव शंकर कुटारे नाराणपुर, सुशील कुमार दत्ता जगदलपुर, अखिल रायजादा बिलासपुर, श्रीमती दंतेश्वरी राव कोण्डागांव, पी. विश्वनाथ जगदलपुर, श्रीमती रजनी साहू मुबई, श्रीमती वंदना सहाय नागपुर, श्रीमती माधुरी राउलकर नागपुर, श्रीमती रीमा चढ्ढा नागपुर, अरविन्द अवस्थी मिर्जापुर, देव भंडारी दार्जीलिंग, जगदीशचंद्र शर्मा घोड़ाखाल नैनीताल, श्रीमती विभा रश्मि जयपुर, नुपूर शर्मा भोपाल, मो.जिलानी चंद्रपुर, डॉ.अशफॉक अहमद नागपुर, रमेश यादव मुंबई श्रीमती सुमन शेखर ठाकुरद्वारा, पालमपुर हि.प्र., श्रीमती प्रीति प्रवीण खरे भोपाल, डॉ. सूरज प्रकाश अष्ठाना भोपाल, डी.पी.सिंह रायपुर, प्राचार्य दंतेश्वरी महाविद्यालय दंतेवाडा, रोशन वर्मा कांकेर, मनोज गुप्ता रायपुर, श्रीमती कमलेश चौरसिया नागपुर, डॉ. कौशलेन्द्र जगदलपुर, पूनम विश्वकर्मा बीजापुर, अमृत कुमार पोर्ते, जगदलपुर, अविनाश ब्यौहार जबलपुर, धनेश यादव, नारायणपुर, कृष्णचंद्र महादेविया, केशरीलाल वर्मा, बचेली, संदीप सेठिया तोकापाल, श्रीमती हितप्रीता ठाकुर, परचनपाल, गोपाल पोयाम, पंण्डरीपानी, श्रीमती खुदेजा खान, जगदलपुर, श्रीमती वीना जमुआर पूना, श्रीमती रजनी त्रिवेदी, जगदलपुर श्रीमती मेहरून्निसा परवेज़, भोपाल

बैक कवर की फोटोग्राफर वैशाली सिम्हा

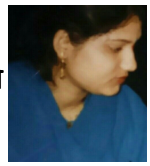

बस्तर पाति का कवर पेज एवं भीतर के चित्र श्री नरसिंह महान्ती

श्री नरसिंह महान्ती बस्तर क्षेत्र के वो कलाकार हैं जो नाम से दूर चुपचाप अपना सृजन कर रहे हैं। इनका सृजन बस्तर के जनजीवन के साथ ही साथ बस्तर का प्राकृतिक सौन्दर्य भी समेटे हुये है।

अपनी तुलिका से कुछ ही पलों में सौन्दर्य गढ़ लेते हैं। किसी भी दृश्य की बारीक से बारीक विशेषता इनकी दृष्टि से बची नहीं रह पाती है। मुख्यतः वाटर कलर के उपयोग से जीवंत दृश्य उकेरने वाले महान्तीजी पानी के दृश्य यूं उभारते हैं कि समझना मुश्किल हो जाता है कि पानी का चित्र है अथवा पानी ही है। पेन्सिल के प्रयोग से ब्लैक एण्ड व्हाइट रेखाओं द्वारा बनाये चित्रों की छटा देखते ही बनती है। इनके बनाये चित्रों की प्रदर्शनी 'आकृति' में लग चुकी है और ***बस्तर पाति*** परिवार पुनः प्रदर्शनी लगाने पर विचार कर रहा है जिससे कि जल्द ही शहर के लोगों को उनका छिपा खजाना देखने को मिले। इनके बनाये चित्र स्थानीय पत्रिकाओं एवं अखबारों में लगातार आते रहते हैं। कई साहित्यिक संग्रहों के मुखपृष्ठ आपके बनाये चित्रों से शोभित हैं।

छपते–छपते

संपादक,

जगदलपुर शहर की पत्रिका 'बस्तर पाति' पहली बार मैंने देखा। निसंदेह यह पत्रिका अपने श्रेष्ठ कलेवर और विषय वस्तु से संतोष प्रदान कर रही है। पाठकों से रूबरू स्तंभ में समसामायिक ज्वलंत विषयवस्तु का सटीक, बेबाक लेखन, संपादक के ज्ञान, उसकी संवेदना का अनुभवजन्य कटु सत्य है। सीधी सच्ची बात को उतने ही सहज वाक्यों में संप्रेषित करने की कला आपको मेघावी सिद्ध करती है। इतने सुंदर आलेख के लिए धन्यवाद ज्ञापित करता हूं।

इस अंक की दूसरी विशेषता पद्मश्री मेहरून्निसा पर केन्द्रित होना। ६ नाम सुनने में जरूर आता था, बस्तर में सनत जी आपने फिर से इसे आफताब बना दिया, इनके साहित्य से व्यक्तित्व से जुड़ी जिज्ञासा को आपने संतुष्ट कर दिया। पद्मश्री से संबंधित जितने आलेख हैं, उनका साक्षात्कर, संपादकीय पर आलेख, उपन्यास पासंग पर दी गई समीक्षा बहुत ही श्रेष्ठ, उच्चकोटि की कही जा सकती है। 'बस्तर के साहित्य मरू की गुप्त सरस्वती' शीर्षक जितना जानदार लगा, आलेख लेखिका के जीवन प्रक्रम उतना ही शानदार लगा। उनके रचना संसार के परिचय से अनभिज्ञ पाठकों के लिए उनके साहित्य रचनाकर्म को परिचित करवा दिया, धन्यवाद। श्रीमती मेहरून्निसा के कद, उनकी बुलंदी से पूरा जगदलपुर प्रसन्न है। डॉ. लक्ष्मण सहाय एवु श्रीमती अनीता सक्सेना दोनों ने शोधपरक शानदार लिखा है, निश्चय ही साधुवाद के पात्र हैं।

अंत में आपका यह श्रमश्राध्य कार्य आपके साहित्य अनुरागी एवं मसिजीवी होने का पुष्ट प्रमाण है। बस्तर पाति में दिखती है आपकी कर्मण्यता, साहित्य सर्जकता एवं ईमानदारी जीवन में आगे बढ़ें, श्रेष्ठ पत्रिका के श्रेष्ठ संपादक बनें, यशस्वी हों। **दीनानाथ कुशवाहा, जगदलपुर, बस्तर छ.ग.**